आवरण पृष्ठ चित्र- असगर वजाहत

अक्टूबर-दिसंबर 2025
अंक-03

वातायनम्

वातायन यूरोप की त्रैमासिक पत्रिका
www.vatayaneurope.com

कहानी:
असग़र वजाहत, अलका सरावगी,
डॉ इला घोष, जयंती रँगनाथन,
हाइंस वरनर वेस्लर

क़िस्सागोई: नासिरा शर्मा

कविता:
एकांत श्रीवास्तव, डॉ कीर्ति काले,
कादंबरी मेहरा, नेहा वैद्य
रामायण धर द्विवेदी

व्यंग्य: दाँत का दर्द: अनिल जोशी

यात्रा वृत्तांत:
मनीषा कुलश्रेष्ठ: टु बी और नॉट टु बी

साक्षात्कार:
प्रो हाइंस वॉर्नर वैसलर (शैलजा सक्सेना)

पुस्तक समीक्षा:
बानू मुश्ताक: हार्ट लैम्प
विजय रंजन: वाल्मीकि का अवदान: विजय नगरकर

अंतरराष्ट्रीय सहित्य:
फ़्रांसीसी कविता: प्रो योजना रावत

आंचलिक (मैथिली):
नागार्जुन, कीर्तिनारायण मिश्र,पं गोविंद झा

बाल साहित्य: अलका सिन्हा, स्मिता श्रीवास्तव

Rajiv Mudgal's The Loom of Time: Shaily Mudgal

Poems: Dr Bashabi Fraser, Yogesh Patel

वातायनम्

संरक्षक
डॉ. पद्मेश गुप्त

प्रमुख संपादक
दिव्या माथुर

प्रबंध संपादक
अर्पणा संत सिंह

संपादक(भाषा)
प्रो. राजेश कुमार

संपादन सहयोग
प्रो. रेखा सेठी
डॉ. वंदना मुकेश
आराधना झा श्रीवास्तव
(आंचलिक)
अजेय जुगरान(अंग्रेज़ी)
ऋचा जैन(विश्व साहित्य)

क्रिएटिव मार्केटिंग मैनेजर
अंतरीपा ठाकुर मुखर्जी

वेब/तकनीकी विशेषज्ञ
शिवि श्रीवास्तव

कोषाध्यक्ष
एडवर्ड क्रास्क

सलाहकार
मीरा मिश्रा कौशिक, ओ.बी.ई.
डॉ. निखिल कौशिक
तितिक्षा दंड शाह

भारत में प्रतिनिधि
प्रो मधु चतुर्वेदी

वातायनम्- वसुधैव कुटुम्बकम्- वैश्विक साहित्यिक परिवार
(A Global Literary Family)

युद्ध, संघर्ष और महामारी के दौर में साहित्यिक और सांस्कृतिक सौहार्द के सेतु के रूप में - वैश्विक साहित्यिक परिदृश्य में नई प्रासंगिकता के साथ साहित्य की आत्मा सभी को एक सूत्र में बाँध देती है, जहाँ भाषा, भूगोल और सांस्कृतिक सीमाएँ गौण हो जाती हैं। साहित्य, कला और दर्शन में शांति, सहिष्णुता और विविधता के विचारों का अन्वेषण, जिनमें साझा मानवता का संवाद है, तथा करुणा, संघर्ष, प्रेम, विस्थापन, स्मृति, पहचान और बेहतर भविष्य की आकांक्षा है। इस संवाद में हर लेखक, हर कलाकार, हर पाठक इस वैश्विक परिवार का अभिन्न अंग है।

वातायनम् का लक्ष्य है, अतीत की प्रेरणादायक रचनात्मक धरोहर, वर्तमान की आधुनिकता और नवीन प्रयोगधर्मिता की अनुभूतियों की सम्मिलित अभिव्यक्ति - जो भविष्य के लिए धरोहर हो, सेतु बने। हमारा प्रयास रहेगा कि वातायनम् केवल पारंपरिक साहित्य तक सीमित न रहे, बल्कि वह नए लेखन और नई प्रौद्योगिकी के साथ कदम से कदम मिलाकर विश्व की अन्य भाषाओं और साहित्य के साथ वैश्विक मंच स्थापित कर सके।

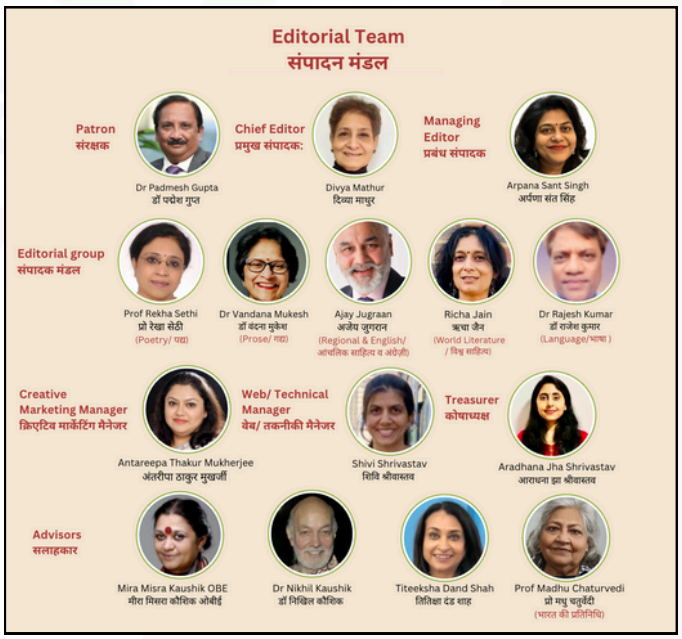

वेबसाइट : https://www.vatayaneurope.com, **यू-ट्यूब :** https://www.youtube.com/@vatayanuk
ई-मेल : vatayaneurope@gmail.com

वातायनम् में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने है,उससे वातायनम् टीम का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।
साभार-पत्रिका में प्रकाशित तस्वीरें गूगल,पिनटेरेस्ट एवं अन्य अंतरजाल से लिये गए हैं।

अनुक्रम

संपादकीय 4

विशेष फ़ीचर:
हिंदी के विकास में अहिंदी-भाषियों...:
डॉ स्वर्ण अनिल 5

कविता:
आखिरी बस: एकांत श्रीवास्तव. 7
ओ रे बसंत! तुम कब आओगे!: कादम्बरी
मेहरा 8
महानगर में इतवार: डॉ कीर्ति काले 9
जुगनू जैसी जलतीं-बुझतीं..: रामायण
धर द्विवेदी 10
उँगलियों के पोर खुरदुरे हुए: नेहा वैद्य. 10

कहानी:
रसोइये: असग़र वजाहत 11
आपकी हँसी: अलका सरावगी 19
मातः! भिक्षां देहि: डॉ इला घोष 22
काली टाई वाली औरत: जयंती रँगनाथ..... 25
घोर कलियुग: हाइंस वरनर वेस्लर 36
व्यंग्य:दांतों का प्रेम प्रसंग: अनिल जोशी 38

लघु कथा:
माफ़ी माँगने के बावजूद: बलराम अग्रवाल 41
कॉफ़ी कैफ़े: नीलमणि 42

क़िस्सागोई:
एशिया महाद्वीप में क़िस्सागोई: नासिरा शर्मा..... 43

समीक्षा:
विजय रंजन 'आदि महाकवि वाल्मीकि के
अप्रतिम साहित्यिक अवदान': विजय नगरकर.... 45

यात्रा वृत्तांत:
मनीषा कुलश्रेष्ठ: टु बी और नॉट टु बी 47

साक्षात्कार:
प्रो हाइंस वरनर वेस्लर: डॉ शैलजा सक्सेना 50

आलेख:
अच्छा साहित्य क्या है: सुशील शर्मा 54
ब्रिटेन में गरमियों का मौसम: आशीष मिश्र 57
वर्ष ऋतु और हिंदी के वरिष्ठ कवि: संध्या
सिलावट 60
बचपन को अख़बारों में जगह क्यों नहीं:
प्रियंका सौरभ 65
फ़िल्म समीक्षा: महाभारत 67

स्थायी स्तम्भ:
छन्द-सलिला: चौपाई: प्रो मधु चतुर्वेदी 68
विज्ञानी भी वैज्ञानिक है: डॉ अशोक बत्रा 69
स्वास्थ्य: आँखों की देखभाल:
डॉ निखिल कौशिक..... 70
नटखट नगरी: इतनी सी है ख्वाइश मेरी:
अलका सिन्हा 72
समीक्षा: बाल कविता-संग्रह: प्रकृति के पंख
(स्मिता श्रीवास्तव): प्रो सुरेन्द्र विक्रम 73

अंतरराष्ट्रीय साहित्य: फ़्रांसीसी कविताओं का हिंदी
अनुवाद: प्रो योजना रावत..... 75

आंचलिक साहित्य (मैथिली भाषा और साहित्य):
संपादिका: आराधना झा श्रीवास्तव
कविताएँ: नागार्जुन 81
कीर्तिनारायण मिश्र 83
अन्तर्भाषिक सम्पर्क: एक विवेचन: पं गोविंद झा .. 85

English:
Artist of the Month:
Asghar Wajahat 89
Rajiv Mudgal's 'The Loom of Time'
Shaily Mudgal 90
Banu Mustaq's Heart Lamp:
Mallika Ramachandran 93
Poems: Dr Bashabi Fraser, CBE 95
Yogesh Patel, MBE 97

संपादकीय

प्रिय पाठको, वातायनम् के इस अंक के माध्यम से आपसे फिर रूबरू होने का मुझे मौका मिल रहा है और मुझे यकीन है कि आपके लिए यह अंक भी रोचक होगा। इस अंक का सुंदर आवरण-चित्र सुप्रसिद्ध लेखक असग़र वजाहत ने बनाया है; पहले दो अंकों के आवरण चित्र लीलाधर मँडलोई जी और ब्रिटिश आर्टिस्ट जेरू रॉय द्वारा चित्रित थे।

ब्रिटेन में दक्षिण एशियाई विरासत माह हर साल 18 जुलाई से 17 अगस्त तक माना जाता है, जो शिक्षा, कला, संस्कृति और स्मरणोत्सव के माध्यम से ब्रिटेन में ब्रिटिश दक्षिण एशियाई विरासत और इतिहास को उजागर करता है, जिसका उद्देश्य लोगों को वर्तमान ब्रिटेन की विविधता को बेहतर ढंग से समझने में मदद करना है। दक्षिण एशियाई संस्कृति ने ब्रिटेन पर कई मायनों में महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है, जैसे कि भोजन, पहनावा, संगीत, नृत्य, इत्यादि। 'रूट-टू-रूट' द्वारा आयोजित, ये आयोजन न केवल हमारे कस्बों और शहरों अपितु विभिन्न देशों के दक्षिण एशियाई लोगों के बीच सौहार्द लाता है।

हमारे विशेष अनुरोध पर इस बार के आँचलिक साहित्य भाग का सम्पादन संभाल रही हैं, आराधना झा श्रीवास्तव, जिन्होंने मैथिली के सर्वश्रेष्ठ लेखकों की सामग्री जुटाई है - पंडित गोविंद झा का आलेख 'अन्तर्भाषिक सम्पर्क: एक विवेचन', 'नागार्जुन' और कीर्तिनारायण मिश्र जी की कविताएं। मिथिला के कवि विद्यापति के शब्दों में, 'देसी बयना सब जन मिट्ठा'।

इस अंक में अन्य महत्वपूर्ण रचनाओं के साथ, मल्लिका रामचंद्रन द्वारा बुकर-पुरस्कार विजेता बानू मुश्ताक की रचना, हार्ट लैम्प, की समीक्षा सम्मिलित है। हम अपने सभी प्रतिभागी लेखकों को धन्यवाद देते हैं, जिन्होंने हमें विविध विषयों पर उत्कृष्ट सामग्री उपलब्ध करवाई है।

हिंदी दिवस की हार्दिक शुभ कामनाएं।

(दिव्या माथुर)

हिंदी के विकास में अहिंदी-भाषियों का योगदान

हिंदी-दिवस पर विशेष

डॉ. स्वर्ण अनिल
शिक्षाविद और
सामाजिक कार्यकर्ता

मैं मानती हूँ कि हिन्दी भारत की लोक परंपराओं की ही भांति लोक-पोषित है। यह भगवान जगन्नाथ के रथ की तरह है जिसको निरन्तर आगे बढ़ाने, सुरक्षित-संरक्षित रखने का कार्य साधारण जन ही करते आए हैं। इस परंपरा में, भारत के महान राष्ट्रवादी कवियों में अग्रणी, तमिल भाषा के अप्रतिम साहित्यकार सुब्रह्मण्यम भारती जी का योगदान अग्रगण्य है।

भारत के प्रत्येक व्यक्ति को हिंदी भाषा सीखनी चाहिए" का उद्घोष करने वाले महाकवि भारती का चिंतन, उनकी अद्वितीय मेधा, उनका बहु-आयामी व्यक्तित्व सबको आश्चर्यचकित कर देता है। केवल 39 वर्षों के जीवन-काल में भारती जी ने सबको अपनी बहुमुखी प्रतिभा से मंत्रमुग्ध कर दिया था।

वर्ष 1909 में उनके संपादन में प्रकाशित 'विजया' नामक पत्रिका के मुखपृष्ठ पर भारतमाता के चित्र के साथ देवनागरी लिपि में भारतमाता और वंदेमातरम् लिखा गया था। 'विजया' पहले चेन्नई से और फिर पांडिचेरी से प्रकाशित हुई।

भारती ने अपने लेख ‘द हिंदी पेज’ में सुझाव दिया था कि भारत के प्रत्येक व्यक्ति को हिंदी भाषा सीखनी चाहिए। वे कहते है कि “हम तमिलों को अवश्य हिंदी सीखनी चाहिए। हालांकि तमिल हमारी मातृभाषा है और यह हमारे लिए महत्त्वपूर्ण है, पर मैं सबको यह सलाह देता हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति को हिंदी सीखनी चाहिए, क्योंकि सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए हमें एक सामान्य भाषा की आवश्यकता है... अंग्रेज़ी को सामान्य भाषा के रूप में अपनाना मूर्खतापूर्ण और असम्भव है, क्योंकि यह विदेशी भाषा है।"

भारती इस बात का भी समर्थन करते थे कि हमारे विद्यार्थियों को संस्कृत भी सीखनी चाहिए, क्योंकि यह साहित्य और ज्ञान की दृष्टि से समृद्ध भाषा है। मेरा निश्चित मत है कि वास्तव में हिंदी (देवनागरी लिपि सहित) को राष्ट्रभाषा, राजभाषा आदि विशेषणों से अभिहित करने का श्रेय किसी राजसत्ता को नहीं जाता वरन जनसत्ता को जाता है। हमारे स्वतंत्रता संग्राम को वाणी देने वाली, समग्र भारत को एक सूत्र में बाँधने वाली जन-जन की भाषा है, हिंदी।

अहिंदी-भाषी राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी ने हिन्दी के विषय में, स्पष्ट शब्दों में 28 अप्रैल 1918 में ही कह दिया था: "स्तंत्रता के बाद हिंदी को तत्कालीन प्रभाव से राष्ट्रभाषा बनाया जाए।" अपने इस मन्तव्य के साथ गांधीजी ने "राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूँगा है" का भी उद्घोष किया था। आंध्रप्रदेश के कृष्णा ज़िले के गाँव दोण्पाडु में जन्मे पद्मभूषण मोटूरि सत्यनारायण जी हिन्दी को राजभाषा घोषित करवाने तथा हिन्दी के

राजभाषा-स्वरूप स्वरूप का निर्धारण कराने वाले सदस्यों में भारत के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों में से एक थे। वे दक्षिण भारत हिन्दीप्रचार सभा, 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा और केन्द्रीय हिन्दी संस्थान के निर्माता और प्रबल हिन्दी प्रेमी थे।

डॉ. शंकरराव कप्पीकेरी जी ने कहा है कि "हिन्दी का पौधा दक्षिणवालों ने त्याग से सींचा है।" इस विचार को बांग्लाभाषी गुरुदेव रविंद्रनाथ ठाकुर जी के 'हम चाहते है कि सारी प्रांतीय बोलियाँ जिनमें सुंदर साहित्य की सृष्टि हुई है, अपने-अपने घर में (प्रांत) रानी बनकर रहे और आधुनिक भाषाओं के हार की "मध्यमणि हिंदी" भारत-भारती होकर विराजती रहे' सत्य से जोड़कर परिभाषित करें।

आइए, इस हिंदी-दिवस पर, केवल औपचारिकता निभाने की जगह, हिंदी को देवनागरी लिपि में लिखने का प्रयास कर उचित पद पर हिंदी को आसीन करने के लिए अपना योगदान करके अपना राष्ट्रधर्म निभाएँ।

आखिरी बस

डॉ एकांत श्रीवास्तव
लेखक, कवि, समालोचक
और अनुवादक

सच्चा प्यार
आकाश की टहनियों में
कहीं छुपा था
अमरफल की तरह

हम जिसे पत्थर मारकर गिराते थे
वह प्यार झूठा था
प्यार शरीर नहीं था
शरीर तो नश्वर था
रेत, मिट्टी, राख था

आखिरी बस की हेडलाइट में
पेड़ प्रकाशित होते थे एक-एक कर
जैसे वे गाछ न हों
कविता हों अरण्य की पुस्तक में

जो प्रकाशित होकर भी
अप्रकाशित रह जाता था
वह हमारे हृदय का पन्ना था
दिन पर दिन
जो भूरा पड़ता जाता था
प्रकाश के इंतजार में

सच्चा प्यार
कहीं सीपियों में पल रहा था
सच्चे मोतियों की तरह
उन समुद्र तटों पर
जो निर्जन थे और खतरनाक भी
और वहां से हम लौट आए थे
आखिरी बस पकड़ कर।

ओ रे बसंत! तुम कब आओगे!

कादम्बरी मेहरा
लेखिका, कवि।

ओ रे बसंत, तुम कब आओगे
हेमंत का अवसान हुआ प्रतीक्षा है तुम्हारी
मुझे पता है मेरी ही तरह तुम बँट गए हो
पूर्वी और पश्चिमी धरा के दो गोलार्द्धों में

तुम्हारा पूर्वी अस्तित्व जीवंत है मेरे अंतर्मन में
जहां पपीहा टहूकता है प्रियतमा के स्वागत में
अमराई की मादक सुगंध धूम सी जगती है मेरी नस नस में
नवकिसलय की लाल चुनर, बसंत बयार लहराती है
मैं चिड़ियों के संग उड़ती हूँ, कभी तितलियाँ पकड़ती हूँ
गाती हूँ सरसों के खेत में।

धीरे धीरे प्रकृति पर रंग चढ़ेगा
हाथ भर चौड़े लाल पीले गुलदाउदी सजेंगे छतों की मुंडेरों पर
मैं कुंद के फूल बीनकर माला बनाऊंगी, चढाने को किसी मंदिर में।

मेरे मन के पलाशवन की कलियाँ, अग्निशिखा सम टेरती हैं
स्वच्छ नील गगन में उड़ती, रंगबिरंगी असंख्य पतंगों को
निहारती हूँ उन्हें घास पर लेटी धूप में
तर्जनी की पोर से ओस को पीती, टिकोरों के गिरने का इंतज़ार करती
पौ फटते सूर्य को अर्ध्य चढाती, होली के रंगों में मन ही मन भींजती
तुमको महसूसती हूँ गुझिया की मिठास में

ओ रे बसंत तुम आओ
तुम्हारी सर्वव्यापी निरंतरता पर मुझको विश्वास है
जब मार्च की प्रथम तिथि को, पहली डैफोडिल की कली खिलेगी
सेंट डेविड का शुभ दिन होगा, यूरोपीय बसंत का उद्घोष होगा
तुम्हारा पश्चिमी स्वरूप निखरेगा मेरे बाहर के बाग़ में

न सही अमराई के बौर, कामिनी की श्वेत कलियाँ गमकेंगी।
बौराती सुगंध मदहोश करेगी, मैं सुख सिहासन पर बैठी देखूँगी
कतार बांधे पंछियों की वापसी, कांच की खिड़की से छनती मीठी धूप में
धानी मोरपंखी की कुंजों में गूंजेगा नवजात चूजों का कलरव
मैं चिड़ियों को दाना देकर, उगते सूरज को माथ नवाकर
पूजा करूंगी तुम्हारी धरती की गुड़माई में
रे बसंत तुम आओ तो, पूरब से चल पश्चिम में
तुम समन्वय की भाषा हो, इस धरती की अभिलाषा हो!

महानगर में इतवार

डॉ कीर्ति काले
कवयित्री और एंकर

कई दिनों के बाद मिला है मनचाहा इतवार।
भोर हुई सूरज ने
अलसाई आँखें खोलीं
उठ भी जाओ मेम साब
कुछ इतराकर बोलीं
गरम चाय के रखा है
टेबल पर अखबार
नहीं चलेगा आज घड़ी की
सुईयों का आदेश
रानीजी धोएँगी पूरे
आधा घण्टा केश
गुड़िया बैठेगी सोफे पर
अल्ती पल्ती मार।

कई दिनों के बाद
साथ में खाना खायेंगे
खट्टी मीठी यादों को
हँसकर दोहराएँगे
गुड्डू को कर लेंगे
पूरे सात दिनों का प्यार।

कल से होगी वो ही झंझट
बस की रेलमपेल
घर से दफ्तर, दफ्तर से घर
दौड़ भाग का खेल
महानगर में छुट्टी लगती
इसीलिए त्योहार ।

कई दिनों के बाद मिला है
मनचाहा इतवार।

जुगनू जैसी जलतीं-बुझतीं, छोटी - छोटी आशाएँ

रामायण धर द्विवेदी
बहु-पुरस्कृत कवि

मन की कोमल-सी डाली पर
झुण्ड बनाकर, आ जातीं
चौकन्नी हो, गौरैया-सी
आँखों को मटका जातीं।
छोटे-छोटे पर से नापें
पर्वत-चोटी, आशाएँ।

चुपके-चुपके नीच निराशा
जब करती हो घर मन में
पग-पग पर जब जाल बिछाए
बाधा लाए, जीवन में
हँस देती हैं, अवरोधों को
काट चिकोटी, आशाएँ।

खेल-खिलौने, गुड्डा-गुड़िया
मोटरगाड़ी, रिक्शे-सी
मोटी-पतली, आड़ी-तिरछी,
ज्यों भारत के नक्शे-सी
बिटिया के हाथों से बेली
पहली रोटी, आशाएँ।

उँगलियों के पोर खुरदुरे हुए

नेहा वैद्य
कवि एवं लेखिका

उँगलियों के पोर खुरदुरे हुए
फूल काढ़ते हुए रुमाल पर।
कितनी बार हाथ में सुई चुभी
एक फूल तब खिला रुमाल पर।।

रेशमी छुअन से भी डरा हुआ
घाव हर कदम पे यूं हरा हुआ
सिसकियों ने होठ सी लिए मगर
दिल में था गुबार-सा भरा हुआ।।

तुम नहीं मिले तो दूर तक चला
आँसुओं का सिलसिला रुमाल पर
कितनी बार हाथ में सुई चुभी
एक फूल तब खिला रुमाल पर।।

खिल उठा रुमाल पे जो ये चमन
और इसमें प्रीति का प्रथम सुमन
पूछने लगी हूं अपने-आप से
ये रुमाल है कि है ये मेरा मन

दर्द की चुभन को भूलने लगा,
फूल-सा जो दिल मिला रुमाल पर
कितनी बार हाथ में सुई चुभी,
एक फूल तब खिला रुमाल पर।।

खुशबुएं लिए नई बहार की
आ गई घड़ी हमारे प्यार की
सामने दिखे जो तुम मचल गई
चाल बावरी हुई बयार की।।

धड़कनों में खुशबुएं बिखर गईं,
पेड़ दिल का जब हिला रुमाल पर
कितनी बार हाथ में सुई चुभी,
एक फूल तब खिला रुमाल पर।।

रसोइये

1

असग़र वजाहत
सुप्रसिद्ध कथाकार-उपन्यासकार और नाटककार

कीव जाने वाले आखिरी ट्रेन पिछले हफ्ते जा चुकी थी। अब इस बात की कोई उम्मीद न थी कि क्रीमिया की सीमा पर स्थित इस गाँव से कोई कहीं जा सकेगा। जो रुक गये थे उन्हें मालूम था कि उन्होंने अपनी जिन्दगी को एक बड़े दांव पर लगा दिया है। गाँव में रुक जाने वाले ऐसे लोग थे जो एक तरह से अपनी जिन्दगी जी चुके थे। अस्सी के आसपास पहुंच जाने वालों के भविष्य की खिड़की बहुत छोटी हो जाती है। ज़िंदगी भर गाँव में बेकरी चलाने वाले फ़िदेर के लिए ज़िंदगी और मौत में कोई खास फ़र्क न बचा था। उसके लिए ज़रूरी था कि उसके जवान बेटे और पोते-पोतियां किसी महफूज़ जगह पहुंच जाते और फिर फ़िदेर अपने कुत्तों और दूसरे पालतू जानवरों को छोड़ भी नहीं सकता था।

उसकी बड़ी इच्छा थी कि जब तक वह जीवित रहे तब तक उसके पालतू जानवर भी जिन्दा रहें। उसके मरने के बाद जो हो सो हो। जब से गाँव खाली हुआ था उसे कोई काम भी न था। तन्दूर ठण्डा पड़ा था। कुछ सूखी रोटियों, दूध और पनीर पर उसकी ज़िंदगी चल रही थी। वैसे भी अस्सी पार कर लेने के बाद उसकी खुराक ही क्या बची थी।

गाँव में रुक जाने वालो में मायकोव भी शामिल था। पेशे से बढ़ई मायकोव का एक पैर बचपन से ही कुछ पतला था और वह उसे घसीट कर चला करता था। इसके बावजूद वह अपने को लंगडा मानने से इंकार करता था। उसे गाँव में कोई लंगडा कहता भी न था क्योंकि उससे सबको काम पड़ता था और उसके जैसा होशियार बढ़ई पूरे इलाके में न था।

मायकोव पागलपन की हद तक अपने औजारों से प्यार करता था। पूरी ज़िंदगी उसने बेहतरीन किस्म के औज़ार जमा किए थे। अच्छे हथौड़े और बसूली खरीदने के लिए उसने एक ज़माने में प्राग तक का सफ़र किया था। रूसी हमले की वजह से जब गाँव छोड़ने का हुक्म आया था तो मायकोव पागल जैसा हो गया था। वह किसी भी कीमत पर अपने औज़ार नहीं छोड़ना चाहता था। उसने भी अपने बेटे माइक और बेटी अन्दिला और उनके बाल-बच्चों को कीव जाने वाली आखिरी ट्रेन में बिठा दिया था और अकेला अपना एक पैर घसीटता गाँव लौट आया था।

सुनसान अकेले घर में रहने के बजाय उसने अपनी वर्कशाप में ही रहने का फ़ैसला किया था ताकि रात दिन वह अपने औज़ारों को देखता रहे। हर औज़ार का इतिहास उसे याद था। किस औज़ार से कब कौन-सा मुश्किल काम मुमकिन हुआ था, उसे मालूम था। कभी बगैर बोले वो अपने औज़ारों से बातें भी किया करता था।

गाँव के बड़े नामी शराबी आंद्रे ने भी गाँव में ही रहने का फ़ैसला किया था। गाँव के ऊपर से भयानक बैलेस्टिक मिसाइलें गुज़रा करती थीं पर उस पर कोई फ़र्क नहीं पड़ता था। वह खूबानी से बनी तेज़ होरिल्का गले में उंडेलता रहता था। आंद्रे के गाँव न छोड़ने की पहली और अंतिम वजह यह थी कि उसे मालूम था कि जैसी और जिस कदर होरिल्का वह पीता है उसे दुनिया में कहीं न मिलेगी। यही नहीं उसके पास होरिल्का का जितना बड़ा स्टाक है, उतना कहाँ होगा? और वो भी उसकी अपनी बनाई हुई।

आंद्रे को यह भी पता था कि रूसी सैनिक होरिल्का के बड़े रसिया हैं। उसने नशे में यह कल्पना भी की थी कि जब रूसी सैनिक उसे मारने आयेंगे तो वह कहेगा - अरे मुझे क्यों मार रहे हो मेरे पास बहुत बढ़िया किस्म की होरिल्का है, पियो और उनको जाकर गालियां गालियां दो इस भयानक बर्फ़बारी में तुम्हें होरिल्का नहीं पिलाते और तुम्हें लड़ने भेज दिया है।

फ़िदेर को याद है इतना सख्त जाड़ा इससे पहले कब पड़ा था। बर्फ़ के इतने तूफ़ान तो उसने कभी बचपन में देखे थे। जब वह दस साल का था और रूस के कामरेड स्टालिन की मृत्यु हुई थी उसके बाद ऐसा तूफ़ान अब आया है। गाँव के घर बर्फ़ टीले नज़र आते हैं और बर्फ़ की जमी हुई झालरों ने घर के बाहर निकलने के रास्ते बंद कर दिए हैं। जानवरों के बाड़े तक जाने के लिए पैर गहरी बर्फ़ में धंस जाते हैं। ठण्डी हवाएं इतनी तेज़ चलती हैं कि घरों की छतों पर अगर भारी बर्फ़ न हो कब की उड़ जायें। सिर्फ दो रंग बचे हैं। काला या सफेद। रात भर हवा के बबण्डरों के अलावा इधर-उधर से तोपों के चलने की आवाज़ें आती रहती हैं।

इसका सीधा मतलब फ़िदेर यही निकालता है कि लड़ाई जारी है। अगर आवाज़ें आना बंद हो गईं तो कोई एक पक्ष आगे बढ़ेगा। और उसे सबसे पहले यही गाँव मिलेगा।

घर से मिली हुई बेकरी है। बाहर मकान पर एक पुराना घिसा-पिटा बोर्ड लगा है जिस पर यूक्रेनी में पेकारनिया का बोर्ड लगा हुआ है। आमतौर पर चर्च से आते-जाते लोगों के लिए इस बेकरी की आदर्श स्थिति है और शायद यही वजह है कि फ़िदेर के पास कभी ग्राहकों की कमी नहीं हुआ करती थी। वह अपने दो सहयोगियों के साथ सदा काम में लगा रहता था।

2

सभी रातें भयानक थी लेकिन यह रात कुछ ज़्यादा ही भयानक हो गयी है क्योंकि दोनो तरफ़ से गोले दागने का सिलसिला बंद हो गया है। तोपो की गरज़दार आवाज़ बंद होते ही एक बड़ा डर फ़िदेर की हड्डियों में दौड़ गया था। मतलब यह था कि अब उनका मोर्चा टूट चुका है और रूसी सेना किसी मी वक्त गाँव में आ सकती है। वह किसी यंत्र की तरह उठा और उसने घर का दरवाज़ा अच्छी तरह बंद कर दिया। खिड़की का शीशा साफ करके बाहर देखने की कोशिश की लेकिन कुछ नज़र न आया। वह ईशु की वेदी के सामने खड़ा हुआ। सीने पर क्रास बनाया और वह प्रार्थना दोहराने लगा जो जाने से पहली चर्च के पादरी ने उसे बताई थी। प्रार्थना से मन कुछ शांत हुआ और वह बैठ कर सोचने लगा कि उसकी हत्या हो जाने के बाद रूसी सैनिक उसके जानवरों के साथ क्या करेंगे... काट कर खा जायेंगे... इसके अलावा वह कुछ और नहीं सोच पाया। हवा के तेज़ झोंको की सरसराहट और सीटी बजने जैसी आवाज़ के साथ उसे बाक्सी के भौंकने की हल्की आवाज़ भी सुनाई दी। इसका सीधा मतलब था कोई आ रहा है। धीरे-धीरे भौंकने की और साफ़ आवाज़ आने लगी। अचानक उसके अंदर पता नहीं क्यों साहस का संचार हो गया, भयानक खतरे से पहले वाले क्षणों में जो होता है। जो होगा देखा जायेगा।

दरवाज़े पर किसी ने जोर से कुछ ठोका और कहा, “दरवाज़ा खोल दो। हम तुम्हें नहीं मारेंगे,” वह ठिठका खड़ा रहा।”

“खोलो दरवाज़ा नहीं तो हम पूरे घर को उड़ा देंगे।”

फ़िदेर के अंदर जो साहस आया था वह अचानक खत्म हो गया, वह एक डरपोक बच्चे की तरह दरवाज़े पर गया और दोनों किस्म के ताले खोल दिए। बाहर से तेज़ बर्फानी हवा के झोंके के साथ एक लम्बा चौड़ा रूसी सिपाही छोटे से दरवाज़े से अंदर आने के लिए कुछ झुका और अंदर आ गया। उसके हाथ में एसाल्ट-राइफ़ल थी जिसका रुख फ़िदेर की तरफ़ था।

“तुम्हारे अलावा यहाँ और कौन है?”
“कोई नहीं।” फ़िदेर को अपनी आवाज़ अपनी नहीं लगी।
“अपने हाथ सिर पर रखो।”
फ़िदेर ने अपने हाथ सिर पर रख लिए। लम्बे फौजी ने इपार-उपार देखा और पूछा, “तुम्हारा नाम क्या है?”
“फ़िदेर।”
“तुम बेकरी चलाते हो।”
“जी.. कैपिता।” कैप्टन कह कर वह सैनिक को खुश करना चाहा था।

“बैठ जाओ।”
“इस गाँव में कौन है?
“मेरे अलावा दो आदमी और हैं... एक बढ़ई एक शराबी।
“यहाँ बहुत अंधेरा है। कुछ रोशनी करो।”
फ़िदेर ने बैटरी वाला लैम्प जला दिया। लम्बा सैनिक भी बैठ गया था। वह कुछ सहज ढंग से बोला, “हमें ब्रेड चाहिए... ब्रेड... हम भूखे हैं।”

फ़िदेर उठ कर गया और ब्रेड की बास्केट उसे पकड़ा दी। लम्बे सैनिक ने कपड़े में लिपटी ब्रेड देख कर कहा, “इससे काम नहीं चलेगा... हम पांच लोग हैं...”
लम्बे सैनिक ने अपना हेल्मेट उतार दिया और ओवर कोट के कालर नीचे कर लिए, अब उसका चेहरा साफ़ दिखाई दे रहा था। फ़िदेर का लगा ये चेहरा उसने कही देखा है। पर कब, कहाँ, कैसे? कुछ याद न आया।

“मैंने एक हफ्ते से रोटी नहीं बनाई। यहाँ कोई है ही नहीं... तन्दूर बिल्कुल ठण्डा पड़ा है।”
दरवाज़ा खुला और एक के बाद एक चार सैनिक अंदर आ गये। उन सब को फ़िदेर ध्यान से देखने लगा। एक तो बिल्कुल सोलह-सत्रह साल का लड़का लग रहा था। एक कुछ छोटे और भारी शरीर का था। तीसरा पक्का किसान लग रहा था। चौथा रूसी नहीं लग रहा था। उसकी मोटी और चपटी नाक बता रही थी कि वह कहाँ का है।
लंबे सैनिक ने उनसे कहा, “फ़िदेर हमारे लिए ब्रेड बनायेगा,” उनके चेहरे चमकने लगे। फ़िदेर घबरा गया।

“देखो... मैं अकेला हूँ... मेरी मदद करने वाला कोई नहीं है, ब्रेड मैं अकेले नहीं बना सकता।
वे सब एक दूसरे का मुंह देखने लगे।
लम्बे सैनिक ने कहा, “ब्रेड तो तुम्हें बनानी ही पड़ेगी।”

फ़िदेर ने काफ़ी निडर भाव से कहा, “हाँ, लेकिन तब कल तक ही ब्रेड तैयार हो पायेगी... पहले मैं लकड़ी चीरूँगा... तब तंदूर साफ़ करूंगा। पानी गरम करूंगा... तब मैदे का बोरा नीचे से निकाल कर लाऊँगा। फिर मैदा गुंधूंगा... तब तंदूर सुलगाऊँगा।”

लम्बे सैनिक ने उसे हाथ उठा कर बोलने से रोक दिया। और अपने साथियों को आँख का इशारा किया।

लड़के जैसे सिपाही ने अपना ओवर कोट उतारा। अपनी एसाल्ट-गन को दीवार से टिका का खड़ा कर दिया। अपन आस्तीनें चढ़ाते हुए पूछा, "जेउष्का लकड़ियाँ और कुल्हाड़ी किधर है?" देर ने उसे हैरत से देखा लेकिन उसमें गज़ब का आत्मविश्वास था।

फ़िदेर ने आँख के इशारे से एक तरफ इशारा किया। नौजवान सैनिक उधर बढ़ गया। फ़िदेर को डर लगने लगा कि कहीं वह अपने पैर पर कुल्हाड़ी न मार लें या कुल्हाड़ी ही न तोड़ दे।

नौजवान सैनिक की एक-एक हरकत पर फ़िदेर की नज़र में थी। उसने बड़े प्यार से कुल्हाड़ी को देखा फिर एक लकड़ी का टुकड़ा उठा कर कुंदे पर रखा और बड़े आराम से कुल्हाड़ी का वार किया। बहुत आराम से उसके दो टुकड़े हो गये। फिर उसने दो के चार टुकड़े किए। वह लकड़ी इस तरह काट रहा था जैसे आज तक उसने यही काम किया हो। उसके अंदाज में अनुभव और लगन नज़र आती थी। उसका कोई वार खाली नहीं जाता था। लगता था वह मोम काट रहा है।

3

वह लकड़ी को देखते ही अंदाज़ा लगा लेता था कि उस पर कितनी ताकत से कुल्हाड़ी चलानी चाहिए। कटी हुई लकड़ियों को भी बहुत सहेज कर रख रहा था ताकि उनको उठाने में कोई दिक्कत न हो। बीच-बीच में वह कुल्हाड़ी की धार पर अपनी एक उँगली फेर कर धार परख लेता था।

लम्बा सैनिक उन सबका कमाण्डर लग रहा था। उसने एक आराम कुर्सी पर बैठ कर सिगरेट, सुलगा ली थी। मोटा सैनिक कटी हुई लकड़ियाँ तन्दूर में लगाने लगा। बाकी दो फ़िदेर के मकान का निरीक्षण करने में जुट गए। वे सिंगार-मेज़ के पास आये तो आईने में अपनी शक्लें देखने लगे।
"तुम्हारे पास आलू तो होगा।" लम्बे सैनिक ने पूछा।

"जी है, ऊपर रखा है।' दोनों सैनिक जो मकान का निरीक्षण कर रहे थे अपने बॉस के अनकहे आदेश को समझ गये। उन्होंने रसोई घर से चाकू तलाश किए और आलू छीलने में जुट गये।
"तुम्हारे पास कोवबासा तो होगा?"

फ़िदेर हैरत में पड़ गया। रुसिया को सब कुछ मालूम है। वह लस्सुन वाली सलामत का ज़िक्र कर रहा था।
"हाँ है।"

बहुत दिन बाद आंद्रे ने अपनी खिड़की से बेकरी की लम्बी चिमनी से निकलता हुआ धुआँ देखा और उस की आँखें चमकने लगी। मतलब फ़िदेर ताज़ी बेड बना रहा है। वह सीधा मायाकोव के पहुंचा और उसे यह खुशखबरी सुनाई। दोनों ने फ़ौरन तय कर लिया था कि गरमागरम बेड के साथ बोर्श मज़ा देगा; वह भी इस भयानक सर्दी में।

फ़िदेर के दरवाज़े पर खटखटाने की आवाज़ आई तो लम्बा सैनिक एकदम से उछल पड़ा और उसने

अल्मारी के कोने में पोज़ीशन ले ली। दो सैनिक अपनी राइफ़लें लेकर दरवाज़े के इधर-उधर खड़े हो गये और फ़िदेर को इशारा किया गया कि वह जाकर दरवाज़ा खोले।

आंद्रे और मायाकोव जैसे ही अंदर आये उनके सिरों पर राइफ़लें तन गयीं। उन्हें इसकी उम्मीद नहीं थी।

लम्बा सैनिक अलमारी के पीछे से निकल आया, "ये लोग कौन हैं?"
"ये मायाकोव है बढ़ई ... ये पियक्कड़ आंद्रे है,"
"पियक्कड़..." लम्बा सैनिक हंस कर बोला।
"पीता ही है या पिलाता भी है?" दोनों के सिरों पर से राइफ़लें उठा ली गई थीं।

आंद्रे अपनी टोपी उतार कर झुकते हुए बोला, "सर... ऐसी बढ़िया होरिल्का पिलाऊंगा कि आपकी तबीयत खुश हो जायेगी।"

एक सैनिक अपनी राइफ़ल लेकर आंद्रे के साथ चला गया। मायाकोव ने इधर-उधर देखा। एक पल में उसकी समझ में सब आ गया। बाकी जो बचा था, फ़िदेर ने उसे आँखों ही आँखों में समझा दिया। ढेर सारे कटे हुए आलू और सलामी के टुकड़े देख कर उसने सोचा ब्रेड के साथ सूप भी मिलेगा।

"मैं सूप बनाने में मदद कर सकता हूँ।" मायाकोव ने अपनी उपयोगिता सिद्ध करने के लिए कहा।
"तुम मैदा गूंधने में इनकी मदद करो... सूप बनाने की कला मिखाइल को आती है।" लम्बे कद वाले सैनिक ने लाल मूँछों वाले की तरफ़ इशारा करके कहा।

लाल मूँछों वाले ने फ़िदेर से कहा, "तुमने मसाले कहाँ रखे हैं? मुझे तेजपत्ता, काली मिर्च और अजवाइन चाहिए..."

"सार्जेण्ट सब कुछ है... ये बात और कि कहाँ है... मैं आपके साथ ढूंढ़ता हूँ... दरअसल मेरी बहू हमेशा जल्दी में रहती है और कभी सब कुछ इधर उधर हो जाता है। वे तीनों मसाले खोजने लगे। लम्बे कद वाले सैनिक ने कुर्सी पर बैठे बैठे अपनी टांगें फैला दीं और आँखें बंद कर लीं, लगा वह अपनी घर की बैठक में हो।

4

तन्दूर में आग खूब सुलग गयी थी। लाल रौशनी ने अंधेरे कमरे की शक्ल बदल दी थी। सब कुछ बदला हुआ लग रहा था, यहाँ तक कि रौशनी में गीला फर्श भी चमकने लगा था। दीवारों पर लगीं पुरानी तस्वीरों के साथ तिपाई पर रखा फूलदान भी कुछ ज्यादा नया-सा लग रहा था। खिड़कियों पर लटकती झालरें और खूटियों पर टंगे कपड़े तक चमक गये थे। आराम कुसी पर लेटे लम्बे सैनिक का चेहरा दमकने लगा था।

सूप बनाने वाले फौजी ने फ़िदेर से सूखे मशरूम मांगे।
"उधर रखे हैं ले लो।" अब फ़िदेर के अन्दर इतनी हिम्मत आ गयी थी कि वह उन्हें सीधा जवाब दे रहा था।

आंद्रे और उसके साथ गया सैनिक पांच-पांच लीटर के दो कैन उठाये घर में घुसे। उनकी चाल ढाल और रंगरूप से लग रहा था कि उन्होंने वहाँ बैठ कर भी अच्छी खासी होरिल्का का सेवन किया है। कप्तान ने आँखें खोली और गैर रूसी सैनिक से दिखाई देने वाले सैनिक से कहा, "अबू मुझे चखाओ... देखूँ कैसी है?"

अबू ने एक छोटे गिलास में होरिल्का पेश की। एक चुस्की लेने के बाद कप्तान ने कहा, जाने के पहले एक कैन हम अपने साथ ले जायेंगे।'
यह सुनते ही आंद्रे का चेहरा उतर गया जिसे देख कर कप्तान ने कहा, "हम तुम्हें पैसे देंगे।"

आंद्रे कहना चाहता था कि इस माहौल में पैसा किस काम आयेगा, लेकिन वह खामोश रहा। सोते हुए शेर को छेड़ना खतरनाक हो सकता था। अगर कप्तान को गुस्सा आ जाए तो वह आंद्रे की सारी होरिल्का के साथ आंद्रे को भी अपने साथ ले जा सकता है। पीने के दौर शुरू हो गये। कहा जाता है|

रूसी जब पीते हैं, जो वो अक्सर पीते हैं, तो खूब पीते है। आंद्रे देख कर हैरान था कि फौजी किस तेज़ी से पी रहे हैं। जैसे जैसे गिलास खाली हो रहे थे वैसे वैसे वे सहज होते जा रहे थे। आपस में ऐसी बातें कर रहे थे कि उनके चेहरे खिल उठे थे। कभी-कभी एक दूसरे के कान में फुसफुसाते थे लेकिन वो कप्तान को भी देख रहे थे। वो देख रहे थे कि उनका व्यवहार कप्तान को कहीं बुरा तो नहीं लग रहा।

5

"आंद्रे नौजवान सैनिक और अबू को अच्छी होरिल्का बनाई जाने के रहस्य समझा रहा था, "फल चुनते वक्त अगर समझदारी से काम नहीं लिया गया तो होरिल्का अच्छी नहीं बनती।"

तंदूर की गरमी, ब्रेड की खुशबू और पोर्श के मसालों की सुगंध एक साथ आ रही थी। इतना पक्का था कि सब का पेट भरेगा और पेट भरने का विश्वास जिस खुशी और आनंद को जन्म देता है वह इनके चेहरों पर देखा जा सकता था। अपना गिलास लेकर मायाकोव फ़िदेर के पास आ गया था।

थोड़ी भी पी लेने के बाद मायाकोव ऊँची ऊँची बातें करने लगता था। वह सिलसिला शुरू होने वाला था। फ़िदेर अच्छी तरह जानता था कि अब मायाकोव बकता जायेगा। वह मायाकोव से बातचीत टालना चाहता था और इसका अच्छा बहाना यह बन गया था कि खाने का बंदोबस्त करने वाले सैनिक को वह ज़रूरी हिदायतें देने लगा था जैसे "अब तंदूर में ज़्यादा लकड़ी मत डालो... ऊपर मर्तबान में सूखे आलू बुखारे और खूबानी है... एक बर्तन में निकाल लो।

तंदूर के बायी तरफ मोमिया कागज़ रखा है उसे सांचों में ठीक से लगाओ।" नौजवान सैनिक फ़िदेर के आदेशों को इस तरह मान रहा था जैसे फ़िदेर उसका बॉस हो।

उन्होंने चौथी बार एक दूसरे के स्वास्थ्य की कामना करते हुए जाम खाली किये। मायाकोव उससे अकलमंदी वाली बातें करने के लिए बेचैन था। अचानक उसको मौका मिला और वह बोला, "देखो, भूख आदमी से क्या नहीं कराती।" फ़िदेर ने लम्बी हूँ कर दी।

मायाकोव ने यह जाने बिना कि कोई सुन भी रहा है या नहीं, कहा, "मैं तो सदा से कहता आया हूं कि आदमी ही आदमी का सबसे बड़ा दुश्मन है और सबसे बड़ा दोस्त है," फ़िदेर ने फिर हाँ कर दी। इसके बाद मायाकोव ने अपना बहुत प्रिय वाक्य दोहराया, "मैं कहता हूँ धर्म जितना अच्छा है धार्मिक लोग उतने अच्छे नहीं हैं।" फ़िदेर ने फिर हाँ कर दी। उसकी आँखें नशे में भारी हो गयी थीं।

"अब इन्हीं लोगों को देख लो... इस वक्त कोई एक ही आदमी इन सब का काम तमाम कर सकता है।"
फ़िदेर ने कहा, "हाँ, लेकिन अगर वो आदमी भूखा होगा तो इसके साथ खाना शुरू कर देगा।"

सैनिकों ने मेज़ पर खाना लगाना शुरू कर दिया था। लम्बा सैनिक किनारे वाली कुर्सी पर जम कर इस तरह बैठ गया था जैसे अकेले ही पूरा रखा जायेगा। आंद्रे भी उनके पास आकर बैठ गया और बोला, "कितना अच्छा लग रहा है।"
मायाकोव ने जवाब दिया, "तुम्हें तो हमेशा ही अच्छा लगता है।"
"नहीं, अकेले पीने में वो मज़ा कहाँ है जो यहाँ है।"
मायाकोव बहुत धीरे से बोला, ये लोग तुम्हारे दुश्मन हैं और तुम्हें मज़ा आ रहा है।" आंद्रे आँख बंद करके हंसने लगा।

फ़िदेर ने कहा, "दुश्मन पता नहीं कौन किसका है।"
फौजियों ने उन्हें मेज़ पर आने के लिए बुलाया जैसे वही घर के मालिक हों। फिर खाने के साथ होरिल्का के दौर चलने लगे।

होरिल्का का नशा वर्तमान को सहनीय बना देता है। अतीत और भविष्य के साथ मज़बूत रिश्ता जोड़ देता है। कल्पना के दरवाज़े खोल देता हैं और बहुत ऊंची उड़ान के लिए पक्षी तैयार हो जाता है। अब यह ऊंची उड़ा किसे कहाँ तक ले जाती है इसका कोई भरोसा नहीं है।

होरिल्का अपना काम कर रही थी। अनजाने में ही तीन गुट बन गये थे। फ़िदेर, मायाकोव और आंद्रे का एक ग्रुप बन गया था जो यूक्रेनी में धीरे-धीरे लड़ाई नहीं बल्कि लड़ाई खत्म होने के बाद आने वाले समय पर बात कर रहे थे। गाँव के जो काम रुक गये थे उनकी चर्चा कर रहे थे। उनकी बातचीत में दुश्मन देश के ये सैनिक शामिल न थे जो अनके सामने बैठे थे।

चारों सैनिक कुछ हंसी-मज़ाक कर रहे थे। उनकी बातचीत का एक आध शब्द कभी फ़िदेर की समझ में आ जाता था जिससे वह पूरे वाक्य को समझने की नाकाम कोशिश करता था।
कप्तान लगातार छत की तरफ देख रहा था। लकड़ी की काली छत में वैसे तो देखने लायक कुछ न था लेकिन कप्तान को वहाँ पता नहीं क्या-क्या दिखाई पड़ रहा था।

धीरे-धीरे फ़िदेर को सब धुंधला दिखाई पड़ने लगा; वह समझ नहीं पा रहा था कि यह सपना है या हकीकत है। फिर उसने यह जानने की कोशिश ही नहीं की क्योंकि सूप बहुत बढ़िया बना था। वह कांपते हुए हाथों

से अपनी प्लेट में और सूप निकालने की कोशिश करने लगा तो गैर रूसी सैनिक ने उसकी प्लेट में सूप भर दिया।

अगली सुबह जब उसकी आंख खुली तो वो अपने बिस्तर पर लेटा था। कुछ क्षण तक वह वैसे ही पड़ा रहा। धीरे धीरे रात का पूरा नक्शा उभरने लगा। वह अपने बिस्तर पर कब आया था या नहीं आया था यह उसको याद न था। धुंधली खिड़की से नज़र आ रहा था कि बर्फ़ अब भी गिर रही है। फिर उसे सुबह किए जाने वाले काम याद आ गये। वह उठ बैठा। उसके जूते बिल्कुल ठीक जगह पर रखे हुए थे। उसने इधर-उधर देखा। सब कुछ वैसा ही था जैसा रोज़ होता था। घर में सब कुछ वैसा ही था जैसा था। वह उठा और अपने सुबह के कामों में लग गया।

फ़िदेर के जीवन में और इस छोटे से गाँव जोबहोकवा में घटी इस घटना का ज़िक्र इतिहास की किसी किताब में कभी न आएगा। गांव वाले कुछ दिन तक इसे याद रखेंगे फिर भूल जायेंगे।

आपकी हँसी

अलका सरावगी
साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित लेखिका

पहली नज़र में वह मुझे एक बहुत खुशमिजाज़ आदमी लगा जो हमारे आने से बहुत खुश था। शायद इसीलिए बात-बेबात हँस पड़ता था। मुझे लगा कि इस छोटे से कस्बे के सूनेपन को तोड़ती हुई हम शहरातियों की टोली के आने से वह बहुत खुश था। उसकी हँसी उसकी बड़े पकौड़े-सी नाक को उठाती हुई उसके चेहरे को अजीब मसखरेपन से रंग देती थी। शायद उसका चेहरा किसी फ़िल्म के कामेडियन से मिलता भी था। वैसे सच पूछिए तो इतना खुश होने की कोई बात थी नहीं। किसी घर में चार जोड़े चार बच्चों सहित यानी कि कुल बारह आदमी आ धमकें, तो कोई कैसे खुश हो सकता है। इस तरह बिना मतलब खुश होनेवाले आदमी को देखकर मेरे अन्दर कुछ अजीब-अजीब-सा होने लगता है - बिना वजह कुछ परेशान हो उठता हूँ। खैर, वह खुश था और उसकी हँसी उसके होंठों को लम्बा तानती हुई चेहरे के दोनों तरफ खूब सिलवटें पैदा करती थीं। मैंने सोचा, शायद छोटी जगह के लोग बड़े शहर के लोगों के आने से परेशान नहीं होते होंगे।

किन्तु यह आदमी है कौन ? इसका हमारे मेज़बान से क्या रिश्ता है - यह समझना मुश्किल था। मुश्किल की वजह यह थी कि वह खाते समय तो हमारे साथ ही बैठकर खा रहा था और हमारे मेज़बान नत्थू बाबू के लड़के की बहू उसे भी खाना परोस रही थी। पर उसके बाद वह उठकर जूठे बरतन उठाने लगा था। उसने मेरी थाली उठा ली, तो मैं संकोच और घबराहट से उसे मना करते हुए थाली पकड़कर उसे ऐसा करने से रोकने लगा, किन्तु वह थाली किसी तरह छोड़ने को तैयार नहीं था। इसी खींचातानी से एक अजीबोगरीब स्थिति पैदा हो गई। तब मैंने हारकर थाली छोड़ दी। वह थाली रख आया और दूसरों की थालियाँ उठाने लगा। मैंने उन लोगों की तरफ देखा, पर किसी के चेहरे पर कोई शिकन नहीं थी। मुझे अपने शहर के इन निर्लज्ज लोगों पर बड़ी हैरत हुई। मुझे लगा कि ये आलसी लोग खुश हैं कि इनका काम करनेवाला कोई मिल गया या फिर शायद इन्हें सारे देहाती लोग अपने नौकर जैसे ही लगते होंगे। रात को सोते समय मैंने देखा कि उसका बिछौना बाहर के कमरे में घर के मालिक नत्थू बाबू के बगल में ही लगा था और वह सब लोगों की बातचीत सुनता हुआ और खुद भी कुछ-कुछ बोलता हुआ हँस रहा था । किन्तु फिर सुबह मैंने उसे कड़कती ठंड में नीचे से बाल्टियाँ भर-भर के पानी लाते हुए देखा। नाश्ता करते समय वह दौड़-दौड़कर रसोईघर से खाना लाकर हमें खिला रहा था। बार-बार पूछकर और लेने का अनुरोध करता था और बीच-बीच में वैसे ही हँसता था। उसके बार-बार पूछने से चिढ़कर हमारी टोली से ही एक व्यक्ति ने रुखाई से कहा, 'कह तो दिया, नहीं लूँगा।' वह शख्स न जाने किस मिट्टी का बना था, इस बात पर हँस पड़ा। मैं तो अपने मित्र की इस बदतमीज़ी पर गुस्से के मारे लाल-पीला हो रहा था, पर उसकी हँसी में न जाने क्या था कि मैं भी हँस पड़ा। मेरी इस बेमतलब की हँसी से हमारे वे मित्र बुरी तरह चिढ़ गए और जल्दी-जल्दी नाश्ता खत्म कर वहाँ से उठ गए।

उसने मुझे एक अजीब पशोपेश में डाल दिया था कि यह आखिर कौन है। वह उस घर का नौकर तो नहीं ही था क्योंकि घरवालों के साथ ही उठता-बैठता और खाता-पीता था। किन्तु वह घर में हर तरह के काम करता था। नत्थू बाबू और उनकी बीवी उसे नौकरों की तरह काम करने के आदेश देते थे
और वह उसी तरह हँसते हुए काम करता था। कभी हाथ में झाड़न लिए हुए सारे घर की धूल झाड़ता फिरता था, कभी किसी कपड़े को उठाकर पूछ लेता था कि 'यह आपका तो नहीं है?' बीच-बीच में वही

हँसी हँसता और काम करता रहता - मेरी आँखें बरबस उसकी ओर खिंच जातीं। हमारी टोली में कोई उस पर विशेष ध्यान नहीं दे रहा था, यहाँ तक कि बच्चे भी, जिनसे वह बार-बार बात करने की चेष्टा करता था, उसकी तरफ से निपट उदासीन थे। यहाँ तक कि उसने एक बार एक बच्चे की गेंद को रोककर उठा लिया और देखता रहा कि बच्चा उसकी तरफ आएगा, पर वह बच्चा गेंद भूलकर दूसरे कमरे में घुस गया। मैंने देखा कि पहली बार उसके चेहरे पर कुछ शिथिलता आई। फिर वह गेंद को धीरे-से नीचे रखकर चौके में चला गया। मैं छत पर जाने के बहाने चौके के सामने से गुज़रा तो मैंने देखा कि वह नत्थू बाबू की बीवी के साथ उबले हुए आलू छिलवा रहा था और बहुत खुश होकर हँस रहा था। मुझसे आँखें मिलने पर वह मुस्कुराया और मुझे भी जवाब में मुस्कुराना पड़ा।

नत्थू बाबू और उसकी बीवी हमारी खूब खातिर कर रहे थे। मैं अक्सर उसके चेहरे पर परेशानी या उकताहट के चिह्न खोजा करता था, पर लगता था कि वे बहुत ही भले आदमी हैं। उनके लड़के की बहू जरूर मशीन की तरह काम करती थी। उसके चेहरे पर न कोई प्रसन्नता दिखती थी, न नाराज़गी। वह काफ़ी सुन्दर भी थी, और खासकर नत्थू बाबू की भैंस जैसी बीवी के सामने तो अपूर्व सुन्दरी लगती थी। कई बार ऐसा लगता था कि उसे अपनी सुन्दरता का बहुत घमंड हो। कई बार लगता था कि बेचारी थक जाती होगी काम करते-करते। एकाध बार तो वह सिर-दर्द का बहाना कर सोती भी रही थी। वह थी भी शहर की ही लड़की। मैं सोचने लगा कि नत्थू बाबा के पास यह आदमी न होता, तो उन्हें हम लोगों का आना पहाड़-सा लगता। बेचारा सारे दिन कुछ-न-कुछ करता घूमता ही रहता था। उसका पाजामा इतना ढीला-ढाला था कि शहराती फैशन के अनुसार उसके तीन पाजामे बन जाते। तेज़ी से चलते हुए उस लहराते हुए पाजामे में वह बड़ा अजीब लगता था। एक बार मैंने दूर से देखा कि उसने नत्थू बाबू के लड़के की बहू को रोककर कुछ बात कही। बहू के भावहीन चेहरे पर न कोई भाव आया और न ही उसने कुछ जवाब दिया। वह ऐसे आगे बढ़ गई जैसे कोई उससे कुछ बात पूछ ही न रहा हो। तब भी वह हँसा और आगे बढ़ गया।

अब मेरे लिए यह जाने बगैर रहना मुश्किल हो गया था कि यह आदमी कौन है। यह क्यों इस घर के सदस्य की तरह रहते हुए भी उन लोगों के लिए जैसे कोई है ही नहीं। इसका अपना घर-परिवार कहाँ है? पर मुझे समझ में नहीं आता था कि किससे पूछूं और कैसे पूछूं। नत्थू बाबू और उनका लड़का दोनों ही बहुत कम बोलते थे। उनसे यह प्रसंग कैसे छेड़ा जाए। कहीं बुरा तो नहीं मानेंगे - इसकी भी आशंका मुझे थी क्योंकि एक तो वैसे ही हम सब उन पर बोझ बने हुए मुफ़्त की पिकनिक मना रहे थे। हमारी टोली में से एक सदस्य उनका कोई दूर का रिश्तेदार था, जिसके कारण हम छुट्टियों में घूमने के लिए उनके यहाँ दो-तीन दिन के लिए टिक गए थे और रोज वहाँ से कोई बाँध या पर्वत या मन्दिर घूम आते थे। ऐसे में उनके घरेलू मामलों में दखल देना मुझे उचित नहीं लग रहा था। नत्थू बाबू और उनके घरवालों का व्यवहार उसके प्रति सपाट-सा था, उसमें न कोई गरमाहट थी और न ही कोई भावना। उस आदमी की हँसी ही अजीब थी, जो मुझे बरबस अपनी ओर खींच लेती थी। नत्थू बाबू की बीवी का वह चौके में भी काफी हाथ बँटा देता था। आखिर इतने लोगों का भार गृहिणी के लिए अकेले सँभालना तो मुश्किल ही था। हमारी टोली में एक स्त्री गृहिणी की मदद अवश्य करती थी, बाकी तीन उसकी प्रशंसा के पुल बाँध बाँधकर ही काम चला लेती थीं। वे घर के काम-काज में हाथ बँटाकर अपनी पिकनिक को बरबाद करने की मूर्खता करने को तैयार नहीं थीं। अपनी सीधी-सादी सहेली की प्रशंसा करते समय उनके चेहरे पर एक तरह के आत्मगौरव का भाव रहता था क्योंकि उन्हें यह अहसास था कि उनका व्यक्तित्व उनकी सहेली से कुछ ऊँचे दर्जे का है। उन्हें देखकर मैं अक्सर सोचता था कि अगर उनके घर में ऐसे मेहमान आ जाएँ तो ये क्या करेंगी।

जिस दिन हम लोग लौटनेवाले थे, उस दिन सुबह वह भी हमारे साथ चाय पी रहा था। उसकी मुझसे एक अनकही आत्मीयता हो गई थी क्योंकि मैं ही उसकी हँसी के जवाब में मुस्कुरा दिया करता था। चाय पीते-पीते नत्थू बाबू ने उसे नीचे जाकर सब्जी खरीद लाने को कहा। नत्थू बाबू के घर के नीचे ही सब्जी का बाजार लगता था। जब वह चला गया तो मैंने नत्थू बाबू से सकुचाते हुए पूछा, 'यह क्या अपने परिवार के साथ नहीं रहता?' नत्थू बाबू पहले तो यह समझे ही नहीं कि मैं किसके लिए पूछ रहा हूँ फिर समझने पर बोले, 'इसका कोई परिवार नहीं। यह यहीं रहता है।' उनके बोलने के ढंग से मैं समझ गया कि वे और प्रश्नों को पसन्द नहीं करेंगे। मैं चुप रहा और अपने प्रश्नों को निगल गया ।

जब हम लोग गाड़ी में सामान लदवाकर चलने लगे तो वह हाँफता हुआ गाड़ी के पास खड़ा हो गया। उसने हमारे सामान को लदवाने में काफ़ी मेहनत की थी। अब वह बच्चों को देख-देखकर हँस रहा था, जो अपनी टाफियों के बँटवारे में लगे हुए थे। नत्थू बाबू और उनकी बीवी वे सब बातें कह रहे थे जो मेहमानों को विदा करते समय कही जाती हैं और हम लोग वे सारे जवाब दे रहे थे जो मेहमान ऐसे मौकों पर दिया करते हैं। नत्थू बाबू की बीवी के चेहरे पर सिर की बला टलने का सन्तोष छुपाए नहीं छुप रहा था। उनके बेटे की बहू जिसने इतने दिन हम लोगों से बात करने की कोई विशेष चेष्टा नहीं की थी, कुछ अनमनी-सी दिख रही थी। उसने कहा, ‘आप लोग आए, तो यहाँ चहल-पहल हुई, वरना बस...' कहकर वह चुप हो गई।

अचानक मेरी निगाह उस पर गई। उसके चेहरे से वह जानी-पहचानी हँसी अब गायब थी और उसकी आँखों से झर-झर आँसू गिर रहे थे। मेरा मन न जाने कैसा कैसा हो गया और मैंने अपनी निगाहें फेर लीं।

गाड़ी चलने पर मैंने नत्थू बाबू के उस दूर के रिश्तेदार से पूछा, 'यह आदमी, जो नत्थू बाबू के यहाँ काम करता है कौन है?' उन्होंने मुझसे कहा, 'कौन, वह पगला? दूर का रिश्तेदार है या कहिए कि मुफ़्त का नौकर है।' मैंने आश्चर्यचकित होकर कहा, ‘पगला? वह क्या आपको पागल दिखता है?' इस पर मेरे वे मित्र हँसते-हँसते दोहरे हो गए। ऐसे लगा जैसे उन्हें कोई दौरा पड़ गया हो।

मैं मूर्ख की तरह उनका मुँह ताकता रहा। हँसी कुछ थमने पर बोले, 'दरअसल आपकी ही तरह पागल है वह। इसीलिए आपको तो 'नार्मल' ही लगेगा न।' उन्होंने फिर एक जोरदार ठहाका लगाया और बोले, 'लेकिन पगले की बीवी बड़ी सुन्दर थी। किसी यार के साथ भाग गई। अच्छा, भला आप ही बताइए, बिना पागल हुए कोई इतना हँस सकता है?' कहकर उन्हें फिर हँसी का दौरा पड़ गया।

◇.....◇

'मातः! भिक्षां देहि'

(बुद्ध पूर्णिमा पर विशेष)

डॉ. इला घोष
प्राध्यापक, संस्कृत और हिन्दी में साहित्य सृजन

आज कपिलवस्तु नगर के लिए विशिष्ट दिवस है। सभी ओर राजमार्गों, गलियों, गलियारों में एक ही चर्चा चल रही है, राजकुमार सिद्धार्थ बोधि प्राप्त कर 'बुद्ध' होकर आ रहे हैं। शाक्य-कुल-दीपक गौतम नगर और राजभवन में भी आने वाले हैं। सभी उत्कंठित हैं, राजकुमार किस प्रयोजन से आ रहे हैं? क्या वे पुनः गृहस्थ जीवन और राजसिंहासन को ग्रहण करने की इच्छा रखते हैं?

वृद्ध महाराज शुद्धोधन मन में सोच रहे हैं, 'ठीक है आज वह, बस आ जाए... येन केन प्रकारेण उसे राज्य का भार सौंपकर विश्राम लूँगा। क्या वह वृद्धावस्था से शक्तिहीन अपने पिता के प्रति इतनी सी अनुकम्पा भी नहीं करेगा? मेरा भी तो पुत्र पर कुछ अधिकार है। उसे जीवन के सत्य की खोज थी, वह तो उसने पा ही लिया है... अब प्रजा के प्रति कर्तव्य-निर्वहन का समय है। जीवन संध्या में वयस्क पुत्र को शाक्य लक्ष्मी प्रदान करके परमात्म-चिन्तन में आत्मनिवेश, यही तो हमारा कुल धर्म है।... आज उसकी माता मायादेवी नहीं हैं किन्तु प्रजापति गौतमी ने उसे अपने पुत्र से भी अधिक ममत्व देकर पाला है। क्या उनका अनुरोध भी उसे रोकने में समर्थ नहीं होगा?'

इस प्रकार भावी चिन्ता में मग्न महाराज को, सप्त-वर्षीय पौत्र ने मानो उद्बोधित करते हुये कहा, ''पितामह! कौन आ रहे हैं? क्या वे कोई महापुरुष हैं, जिनके लिए हमारे नगर को इस प्रकार सजाया गया है। राजमार्ग चन्दन के जल से धो दिये गये हैं, चौराहों पर फूल से सुन्दर रांगोली बनाई गई है। सारी दुकानें और भवन पताकाओं से सज गये हैं, जगह-जगह तोरण द्वार लगाये गये हैं, लोग हर्षित हैं। सभी अलग-अलग कामों में व्यस्त हैं... किसी के भी पास मेरे साथ खेलने का समय नहीं है।''

बालसुलभ प्रश्नों की परम्परा से वर्तमान में लौटे हुये महाराज उसे गले से लगाते हुये बोले, ''वत्स! मैं खेलूँगा तुम्हारे साथ।''

सिद्धार्थ का प्रतिरूप यह बालक सभी के नेत्रों का उत्सव और जीवन का आधार है। उसके प्रश्नों का क्या उत्तर दें, वे समझ नहीं पाये, कैसे कहें कि 'आज... तुम्हारे पिता सात वर्षों बाद लौट रहे हैं, जो तुम्हारे जन्म के बाद ही तुम्हें और तुम्हारी माता को छोड़कर चले गये थे... पता नहीं कैसी प्रतिक्रिया होगी बच्चे की? पिता के प्रति रोष और स्वयं के प्रति ग्लानि तो नहीं जन्मेगी?'

खेलने के लिए साथी पाकर राहुल उच्छ्वसित हो उठा, वह पितामह का हाथ पकड़कर क्रीड़ोद्यान में पहुंचा। उसने उनकी ओर गेंद उछालते हुये कहा, 'लीजिए लपकिये इसे।'

महाराज कुछ अन्यमनस्क ही थे। पुत्र से संबंधित नाना चिन्ताएँ उन्हें छोड़ नहीं रही थीं.... लोग कहते हैं, वह तथागत हो गया है। उसने अपने पॉंच शिष्यों को नये धर्म का प्रथम उपदेश दिया है। उसके धर्मचक्र से

प्रभावित होकर मगध के प्रतापी सम्राट बिम्बिसार भी अपने आत्मीय जनों के साथ उसके अनुगामी हो गये हैं... हो जाये वह तथागत बुद्ध, किन्तु है तो मेरा ही पुत्र, मेरा अंश।... आज यशोधरा के साथ पुनः उसे मिलाते हुये प्रायश्चित्त करूँगा.... उस तपस्विनी को गृहस्थ जीवन का किंचित भी सुख नहीं मिला और कैसा भाग्यहीन है यह शिशु। क्या पिता के रिक्त स्थान को कोई भर सकता है। उसके बाल मन में अपने पिता के विषय में अनेक प्रश्न हैं, 'सबके पिता हैं, मेरे क्यों नहीं?'

'मुझ अपराधी को क्षमा करो पुत्रि! स्वार्थ-सिद्धि के लिए उस विरक्त का विवाह कराते हुये मैंने तुम्हारे जीवन को घोर दुःख में डाल दिया है। क्या करता?... उस समय घोर निराशा के अंधकार में वही तो एक रश्मि रेखा थी। सोचता था, कदाचित वधू के रूप-लावण्य और मोह-पाश में बँधकर घर गृहस्थी में रम जाये।... हाय! वह तो हताशा ही थी... मरुमरीचिका... आज वह आ रहा है, कैसे भी हो, अनुनय-विनय से तुम्हारे पास ले आऊँगा।'

''पितामह! आपका ध्यान खेल में नहीं है, इतने पास आई हुई गेंद को भी पकड़ने से आप चूक गये।'' पौत्र के उपालम्भपूर्ण स्वर से महाराज की अन्यमनस्कता भंग हुई।

'वत्स! प्रमाद हो गया, बूढ़ा हो गया हूँ न! अच्छा तुम्हारी माता कैसी हैं?'

''पता नही, कुछ बोलती ही नहीं... बस शून्य की ओर देखती हुई वातायन के पास खड़ी हैं।''

यशोधरा... वातायान का आश्रय लेकर शरीरमात्र से खड़ी है... मनोविहग तो बहुत दूर चला गया है। केलियगण में रोहिणी नदी के तीर पर 'समाज' का आयोजन हुआ है... नाना देशों से राजकुमार, रथी महारथी योद्धा-धुरन्धर अपने शौर्य-वीर्य और कलाकौशल का प्रदर्शन करने के लिए एकत्रित हुये हैं। सभी प्रतिस्पर्द्धाओं के निष्णात परीक्षक ऊँचे मंच पर विराजमान हैं, दर्शक दीर्घा में तिल रखने का भी स्थान नहीं है। राज परिवार की स्त्रियों के लिए मंच के समीप ही बैठने की विशेष व्यवस्था की गई है।

क्रमशः उद्घोषणाओं के साथ एक-एक स्पर्द्धा सम्पन्न हो रही है। अनेक राजकुमारों के मध्य, अश्वारोहण शरसन्धान, खड्गसंचालन, मल्लयुद्ध, संतरण, गीत-वाद्य-चित्र आदि कलाओं की सभी प्रतिस्पर्द्धाओं में शाक्य कुमार सिद्धार्थ ने अभूतपूर्व नैपुण्य का प्रदर्शन किया है। जन समूह की तुमुल हर्षध्वनि पुनः पुनः उनका अभिनन्दन कर रही है। सर्वकौशल निपुण उस युवा की धीर गंभीर आकृति, ज्ञान-दीप्त-दृष्टि, मन्द मधुर स्मित सब कुछ जैसे यशोधरा के मन पर अंकित होते जा रहे हैं... राग का अंकुर फूट रहा है। सलज्ज विनम्र दृष्टि के साथ वह आयोजकों की ओर से एक श्वेत गज, सकल-कला-निलय, अप्रतिरथी राजकुमार सिद्धार्थ को उपहार में देती है। वे भी प्रसन्न कृतज्ञ मन से उसे स्वीकार करते हैं।

इसके पश्चात शाक्यगण से आता है विवाह-प्रस्ताव... अविस्मरणीय वह विवाहोत्सव... हृदय के तारों में अभी भी उसकी झंकार शेष है। वह मधुयामिनी, मधुमय स्मृतियाँ, फिर पुत्र जन्म... किन्तु सिद्धार्थ ने अन्तःकरण से इसका अभिनन्दन नहीं किया। विषण्ण दृष्टि से शिशु को देखते हुये दीर्घश्वास ले वे प्रसूतिका गृह से बाहर चले गये।

क्या यशोधरा पति की मनःस्थिति को नहीं जानती, कुछ भी अविदित नहीं है, जानती है - वहाँ कैसी ऑंधी चल रही है, राग विराग का द्वन्द्व, बन्धन से मुक्ति की विकलता, नाना संकल्प विकल्प।

इसके पश्चात किसी प्रकार एक माह बीता... बहुत बार उसने अनुभव किया, सिद्धार्थ शैय्या पर उसके पार्श्व में नहीं है... बाह्य उद्यान में एकाकी ही बाँसुरी बजा रहे हैं, चारों ओर ज्योत्स्ना फैली है, करुण स्वर लहरी मर्म को भेद रही है।

सहधर्मिणी के रूप में उसका क्या कर्तव्य है, स्वयं ही मुक्ति दे देगी उन्हें इस यंत्रणामय ऊहापोह से। हृदय को वज्र बनाकर कह देगी, 'सत्य के अन्वेषण पथ पर स्वच्छन्द विचरण के लिए, तुम्हें मुक्त करती हूँ' किन्तु.... हा दैव! जीवन में वह अवसर कभी आया ही नहीं। उसी रात, गहन निशीथ में पत्नी-पुत्र-आत्मीय-परिजन-राजभवन सभी को त्यागकर सिद्धार्थ कपिलवस्तु से निकल गये।

यशोधरा का जीवन अब है, उत्सव शून्य ऋतुहीन। सात वर्ष बीत गये.... प्रतीक्षा... अंतहीन प्रतीक्षा। 'क्या आज उस प्रतीक्षा का अवसान होगा? क्या वे कृपापूर्वक उसे भी साथ ले जायेंगे?'
तूर्यध्वनि सुनाई दे रही है, जन कोलाहल भी। सारी इन्द्रियाँ मानो कानों में प्रविष्ट हो गई हैं, हृदय जैसे उछल रहा है। अब वाद्य-स्वर शान्त है, वायुमण्डल में गुरु-गंभीर स्वर लहरी व्याप्त है, 'मातः! भिक्षां देहि।'... बहु परिचित है यह कण्ठस्वर, कानों में अमृत-रसवर्षी, किन्तु सम्बोधन? क्या श्रुति-भ्रम हुआ है? वातायन से दृष्टि फैलाकर देखती है यशोधरा। उसी के भवन द्वार पर खड़े हैं, तेजोमण्डल से परिगत, क्षीणकाय भिक्षु, मुण्डित मस्तक, चीवर धारी। पुनः भिक्षा के लिए निवेदन - 'मातः! भिक्षां देहि।'

क्षणमात्र में ही पहचान लिया उसने, सिद्धार्थ ही हैं, तपःकृश आकृति, सत्य के तेज से भासित मुखमण्डल। वही हैं, कोई संदेह नहीं। 'प्रिया, दयिता, कान्ता, वनिता, सुन्दरी, भामिनी, यशोधरा, गोपा जैसे नाना संबोधनों से सम्मानित गोपा के लिए आज यह सम्बोधन-'माता?'

आशा का अंतिम बंधन भी विच्छिन्न हो गया। क्या हो सकती है उनके योग्य भिक्षा?... माता का नयन-मणि प्राणसर्वस्व पुत्र। राहुल को आगे करके वह द्वारदेश पर पहुँचती है, 'तथागत! यही भिक्षा है। अनुग्रहपूर्वक स्वीकार करें।' इसके पश्चात पुत्र का हाथ अपने हाथ में लेते हुये कहती है, 'वत्स! तुम अनेक बार अपने पिता के विषय में पूछते रहे हो, यही महापुरुष तुम्हारे पिता हैं। इनका अनुसरण करो। सर्वदा आज्ञापालक और अनुगामी बने रहना।'

ऐसा कहकर द्रुतगति से अपने कक्ष में आकर पर्यंक पर बैठ जाती है। कण्ठ में अवरुद्ध अश्रु अब संयम का बंध तोड़कर वक्षःस्थल को भिगो रहे हैं। कुररी सा कातर क्रंदन हिचकियों के साथ चतुर्दिक व्याप्त हो रहा है।

◇.....◇

काली टाई वाली औरत

जयंती रंगनाथन
संपादक, लेखिका

ठीक घर के नीचे, तमाम तारों और केबल से घिरे बिजली के खंभे पर, बीचोबीच लकड़ी का एक बोर्ड लगा हुआ था, एकदम नया-

क्या आपका बच्चा पढ़ाई छोड़कर हर समय मोबाइल में लगा रहता है? सोशल मीडिया में फेसबुक, इंस्टा और रील में गुम रहता है?अगर हां तो चेत जाइए, यह एक बीमारी है।इससे पहले के कोई बड़ा कांड हो जाए, उसे मोबाइल एडिक्ट बनने से रोकिए।इस बीमारी का शर्तिया इलाज बस दो दिनों में।
संपर्क कीजिए: डॉक्टर अंजुमन से।

नीचे दो मोबाइल नंबर दिए गए थे। घर की सीढ़ियां चढ़ते समय रूना ने रुककर पोस्टर पढ़ा। चेहरे पर अजीब सी मुस्कराहट आई। लो, अब ये भी धंधा बन गया। रूना घर पहुंची तो मां बालकनी में आरामकुर्सी पर आंख बंद किए सो रही थीं। उनको इस तरह शांति से सोते देखना अच्छा लग रहा था। मां की बाईं आंख का पांच दिन पहले मोतियाबिंद ऑपरेशन हुआ था। टीवी मोबाइल नहीं देख पाती थी, एक तरह से फ्रस्ट्रेटेड हो रही थीं। रूना ने गैस जला कर भगौने में पानी डाला। मां और वो एकदम कड़क और सख्त सी चाय पीते हैं। दो खारी बिस्किट के साथ। मां का बस चले तो चाय के साथ भी अपनी बतकही जारी रखे। रूना ने ही नियम बनाया है, हाल-फिलहाल। खाते-पीते समय कोई बात नहीं करेगा। और तो घर में कोई रहता नहीं, मां के लिए ही हैं ये और ऐसे वाले सारे नियम। मां भुनभुन भी करती हैं। नियम तोड़ती भी हैं। गुस्सा भी होती हैं। पर रूना की मर्जी; ऐसे ही थोड़े खूसट मास्टरनी के नाम से मशहूर है।

तो रूना पढ़ाती है एक मिडल स्कूल में। स्कूल बेशक प्राइवेट है, पर सारी खामियां सरकारी वाली हैं। बच्चों को पढ़ने में कोई दिलचस्पी नहीं और मास्टरों को पढ़ाने में। मास्टर गति को पहुंचे लोग बस हर समय इस फेर में रहते हैं कि उनके पैसे कैसे बढ़ जाएं। हर मास्टर के पास तयशुदा बच्चे ट्यूशन पढ़ने आते हैं, स्कूल में ही या उनके घर में। शायद ही कोई बच्चा स्कूल में ऐसा हो जो ट्यूशन पढ़ने ना जाता हो। रूना ने भी किया यह काम कुछ साल। दो साल पहले जब पापा के गुजरने के बाद मां साथ रहने आई, तो उसने ट्यूशन लेना छोड़ दिया।

ऐसा नहीं था कि उसे अतिरिक्त पैसे खलते थे, चाहिए थे, जरूर चाहिए थे, पर मां ज्यादा देर तक घर में अकेली नहीं रह पाती थीं। जब शाम को स्कूल में ट्यूशन पढ़ाकर रूना थक-हारकर घर आतीं, तो मां कभी बीच बाजार में तफरी कर रही होतीं तो कभी बाइयों के मोहल्ले में कोई सिरफरी सी बात लेकर कभी जमादार से तो कभी कचड़ा उठाने वाले किसी बच्चे से झगड़ रही होतीं। वहां से मां को वापस घर लाना टेढ़ी खीर होता। रोज-रोज के झंझट से तंग आकर रूना ने ट्यूशन लेना छोड़ दिया।

अब दोनों साथ रहते थे, पर ऐसे जैसे दो तलवारें आपस में भिड़ने को तैयार हों। मां कुछ कहती, रूना दो-दो जवाब देती। रूना के कुछ का मां कुछ और बनाती और देर रात तक मां-बेटी में दुस्साहसी लड़ाइयां होती रहतीं। चीखम चिल्ली और कभी-कभी तो तोड़-फोड़ भी।

रूना ने कभी किसी से इस बात की शिकायत नहीं की कि मां उसके साथ क्यों रहती हैं। एक भाई था बड़ा और बहन थी छोटी। दोनों शादीशुदा थे। दोनों ने मां को साथ रखकर देख लिया, दोनों की शादियां टूटने के

कगार पर आ गई। तय हुआ मां रूना के साथ रहेंगी। वो भी अकेली, मां भी अकेली। रूना की खब्त पूरे परिवार में नामचीन थी। मां तो पहले से थीं। दोनों का साथ रहना और एक-दूसरे की खब्त बांटना लाजिम था।

--

रूना चाय बनाकर कमरे में ले आई। मां के कान के पास जाकर जोर से चिल्लाई, 'चाय तैयार है।'
मां घबराकर उठीं। हिलती हुई। पांच मिनट तक हिलती रहीं। पहले खुद को संभाला फिर अपने हिलते हाथ को। चाय का कप हाथ में लेने के बाद कुछ बोलने के लिए मां ने मुंह खोला, रूना ने यह कहकर चुप करवा दिया, 'पी लो, फिर बोलना। मैं भी तुम्हें एक मजेदार बात बताऊंगी।'

चाय पीने तक मां किसी तरह दांत भींचे और पेट दबाए बैठी रहीं। कप नीचे रखते ही मां की आवाज आने लगी, 'तू हमेशा मुझे चुप रहने को क्यों कहती है? तू तो ना होती चुप। मुझे बता आज खाने में दाल इतनी फीकी क्यों थी, तड़का भी नहीं था। मैं ऐसा खाना खाऊंगी अब? मुर्दों वाला खाना?'

रूना चिढ़कर बोली, 'लगाया तो था तड़का। पर तुम्हें ना मां, मिर्च मसाला खाने की बुरी आदत पड़ गई है। फिर सुबह उठकर रोती रहती हो कि जल रहा है पिछवाड़ा। जलेगा खूब जलेगा। और खाओ मिर्ची। मैं कल से लाल मिर्च कूटकर रख जाऊंगी एक कटोरी में। मिला लेना दाल में।'

'तू राक्षसी है। वो ही बोलती हैं ऐसी बातें। मैं क्यों खाऊंगी कुटी मिर्च? खाना ठीक से बनाना आता नहीं, दोष मिर्च को दे रही है।'

ऐसी बातें अनंत काल तक चलती रहती थीं। सुनने वाले को अखर सकता था, बोलने वाले को नहीं। पर अंतत: रूना ही बीच में रुकी और उसने मां को घर के नीचे लगे पोस्टर के बारे में बताया। मां चमत्कृत हुई, फिर बोलीं, 'मैं भी जाकर देखूंगी। बरनी का बेटा मोंटू तो मोबाइल के पीछे पगलाया रहता है। दिनभर बस रील-रील। बरनी को बोलूंगी अपने बेटे का इलाज करवा ले।'
बरनी यानी रूना की छोटी बहन।

मां को शाम को सीढ़ी से उतारकर रूना नीचे का एक चक्कर लगवा लाई। मां की आंखें अभी कमजोर थीं, सो रूना से एक पर्चे पर अंजुमन का नंबर लिखने को कहा। रूना को लगा, मां नंबर बरनी को भेजेंगी। पर मां के दिमाग में तो कुछ और ही था।

--

रूना को दुनिया के तमाम बच्चों की तरह स्कूल जाना सख्त नापसंद था। लेकिन मजबूरी। बच्चों की भी, अध्यापकों की भी। सुबह जल्दी उठना, तैयार होकर और अपना होमवर्क करके जाना, ये ऐसे काम थे, जिनसे रूना स्कूली टाइम से ही बचकर चलती। पर क्या करें, अध्यापिका की नौकरी टाइम से और आसानी से मिल गई। परमानेंट होने के लिए बीएड भी कर लिया। फिर आदत भी तो होती है। बन गई आदत। अपनी इस बेजार आदत से खदबदाई रूना को स्कूल से घर लौटना अच्छा लगता था। रास्ते में यूं ही लपड़-लपड़ पैर चलाते हुए घूमना, कुछ पसंद की चीज खरीदकर खा लेना, ये सब अध्यापकी के पर्क्स थे। तो अच्छे मूड में चल रही थी रूना। दोपहर ढले घर के अंदर घुसी तो एकदम कमरे के बीचोबीच एक अजीब सी शक्ल वाली औरत को बैठा पाया। शक्ल-वक्ल तो बाद की बात, सबसे पहले निगाह गई उसके ढीलमढील शर्ट पर पहनी गई काली टाई पर। रूना बेतहाशा चौंक गई। फिर उसने गौर से देखा, पैरों में एकदम ढीला सा पैंट, कंधे तक के बदरंग बालों की अस्त-व्यस्त पोनी। है कौन? उसके घर में क्या कर रही है?

उसके ठीक सामने मां बैठी थी। मां का चेहरा बता रहा था, उनका मूड और दिमाग सही है।
रूना के चेहरे पर असमंजस देख मां ने जल्दी से कहा, 'तूने पहचाना? कल तूने जिक्र किया था इनका।'
रूना ने चेहरा घुमाया। और नहीं में सिर हिलाया।

'अरे, अंजुमन हैं। बिल्डिंग के नीचे पोस्टर लगवाया है। मोबाइल की बीमारी से छुटकारा दिलवाने वाली डॉक्टर।'

रूना की आंखें चौड़ी हो गईं। अंजुमन की कमर जितनी। हारकर उसने अपनी निगाह उनके चेहरे पर जड़ दी। अंजुमन एक पांव पर दूसरे पांव रखकर बैठी थी। घड़ी-घड़ी ऊपर रखा पांव हिलाने लगती। मां के चेहरे पर लंबी वाली हंसी फैली थी। यानी उन्हें अच्छी लग रही थी काली टाई पहनी यह औरत।

रूना अपना स्कूल का बैग रखकर कुर्सी खींचकर बैठ गई। मां को देखकर पूछ लिया, 'इनसे कब बात की तुमने? कल रात ही तो नंबर लिया था?'
'सुबह। जैसे तू स्कूल गई, मैंने फोन लगा दिया। हमने खूब बातें की। कह रही हैं बरनी के बेटे की लत तो एक ही दिन में ठीक कर देंगी। मैंने कहा, घर आ जाओ। यहीं से फोन कर लेंगे बरनी को।'

'तो कर लिया?'
'अरे अभी कहां, अभी तो हमारी बातें ही खत्म नहीं हुईं। अंजुमन मैडम तो गजब की हैं। अमरीका में काम कर चुकी हैं...'
'हम्मम... क्या काम? मोबाइल वाली बीमारी को ठीक करने का?' रूना की आवाज तीखी सी थी।

अंजुमन के चेहरे की मुस्कान पहले थोड़ी उतरी, फिर बहुत। गला खंखारकर बोलीं, 'बीमारी तो बीमारी है। ऐसी कई बीमारियां से दो-दो हाथ कर चुकी हूं। बट फॉर युअर काइंड इंफार्मेशन, मैं प्रोफेशनल डॉक्टर हूं। मैंने न्यूयॉर्क में चौदह लोगों के परिवार में ये बीमारी ठीक है। दादा से पोता तक, हर कोई दिन में बाइस घंटे फोन पर अटका रहता था। मैंने ऐसा शर्तिया इलाज किया कि उस घर में अब एक भी मोबाइल फोन नहीं है।'

'अच्छा क्या किया? चोरी करवा दिया क्या?'
'लगता है आपकी बेटी को मुझ पर यकीन नहीं है अम्मा।' अंजुमन ने मां की तरफ देखकर कहा, 'तब से मजाक उड़ाए जा रही है। इतना बड़ा पोस्टर पूरे शहर में हर कहीं लगाया है, तो कोई तो बात होगी ना मुझमें?' अंजुमन के मुंह से गुस्सा नुमा झाग निकलने लगा।

मां ने बात संभाली, 'मास्टरनी है ना। बच्चों को जल्दी से नंबर नहीं देती। बुरा ना मानो इसकी बातों का। आपके टाइम पर भी स्कूल में सनकी मास्टरनियां होती थीं ना। वैसा ही समझ लो।'

रूना का मन हुआ, मां को वहीं सुना दें। पर इस समय नहीं। काली टाई वाली औरत के सामने नहीं।
वो उठी और थोड़ा आवाज ठीक करके बोली, 'चाय पिएंगी आप? इस समय मैं और मां रोज पीते हैं।'
'हां, पी लूंगी। चीनी तेज रखना। कोई बीमारी नहीं है मुझे।'
वैसे शक्ल और शरीर से तो लग रहा था, तमाम होंगी, तभी दूसरों के मोबाइल की बीमारी को ठीक करने का ठेका ले रखा है।

काली टाई वाली डॉक्टर अंजुमन दिलचस्प किरदार थीं। चाय के साथ-साथ किस्से पर किस्से चटकाती गईं।

अंतिम किस्सा था कि उसे काला जादू आता था और अकसर वो अपने क्लायंट को ठीक करने के लिए दवाओं के साथ काला जादू का इस्तेमाल करती थी। मां यह सुनकर बेहद उत्तेजित हो गई। लेकिन रूना हाथ बांधें बैठी रही। यह थोड़ा ज्यादा हो गया। काला जादू? कोरी गप्प।

अंजुमन गंभीर आवाज में बोली, 'यकीन करना है तो करो, वरना मेरा क्या? पर मैं जो काला जादू को भी एक दवा मानती हूं। हड्रैंड पर्सेंट शर्तिया इलाज।'
'मोबाइल के लत जैसी टुच्ची चीज छुड़ाने के लिए काला जादू? ऐसा कौन करवाता होगा?'

'उनसे पूछिए जिनके घर में बच्चों से लेकर बड़े तक कामधाम छोड़कर हर समय मोबाइल में डूबे रहते हैं। हर समय बस रील-रील। यह इस सदी की सबसे बड़ी लत है। शराब और गांजे से भी ज्यादा। वो लत तो आप छुड़ा भी लो, मोबाइल की लत छोड़े ना छूटती है। मेरे पास एक मां आई थी अपने तेईस साल के बेटे के साथ। उसका एक कंधा कान के साथ जुड़ गया था। लड़का मोटरसाइकिल चला रहा हो या पैदल चल रहा हो, एक कान पर हमेशा फोन टंगा रहता। वो भी कंधे के सहारे। लोग कुबड़े होते हैं, वो लड़का कंधड़ा हो गया था। एक सेकंड मोबाइल फोन के बिना ना कटे। कभी देखे रील, तो कभी गेम खेले तो कभी कुछ सुन ले। अजब था हाल। ठीक से खड़ा नहीं हो पा रहा था। मरीजों का मरीज था। दवा और दुआ से ठीक होने वाला प्राणी नहीं। फिर मैंने किया इलाज। एकदम ठीक हो गया। अब मोबाइल फोन देखते ही उसे उबकाई आ जाती है। दूर उठाकर फेंकता है जैसे रेंगता हुआ सांप देख लिया हो।'

रूना हंसने लगी, 'और ये सब काला जादू से हुआ?'
'बिलकुल। मैं पहले मरीज को देखती हूं। दवा से ठीक होने वाला हो, तो सही। नहीं तो यही इलाज करती हूं। यह शर्तिया इलाज है। सौ परसेंट।'
मां बुदबुदाने लगी, 'मोंटू के लिए यही इलाज सही रहेगा।'

'चुप रहो मां,' रूना गरजकर बोली, 'बेकार में बरनी और मोंटू का समय खराब ना करो। मैं बात करूंगी, मोंटू से। ये जादू-वादू कुछ नहीं होता। और मैडम अंजुमन। आपने चाय पी ली है तो अपनी तशरीफ का टोकरा उठाकर जाएं यहां से। हमारी मां के सामने ये उल्टी-सुल्टी बातें मत कीजिए। ये खुद भी काली-पीली जादूगरनी से कम नहीं। कहीं आप पर जादू ना कर दे।'

अंजुमन तमतमाकर उठ खड़ी हुई। अब जाकर उसका असली कद सामने आया। वो पांच फुट से कुछ कम की खाती-पीती महिला थी। रूना थी पांच फुट छह इंच की लहीम-शहीम कद-काठी की औरत। वो एकदम से काला जादू की डबल लग रही थी। अंजुमन ने अपने कद को नापते हुए सिर झुकाया और दरवाजा खोलकर दन-दन करती बाहर निकल गई।

मां अब तक अपने को जब्त किए थी, फट पड़ी, 'तूने घर आए मेहमान का अपमान कैसे किया? वो भी मेरे मेहमान का? मैंने बुलाया था उसे।'
रूना अपनी आवाज काबू में रखती हुई बोली, 'मां तुम इन चक्करों में मत पड़ो। घर पर मत बुलाया करो। सच में जादू जानती होगी तो अनर्थ कर देगी।'

'जरूर जानती होगी। मैं कहूंगी उससे, तेरे पागलपन का इलाज करे सबसे पहले। हां, पागल है तू पागल। मैं कहे देती हूं, मुझे अच्छा नहीं लगा तेरा बोलना। पाप लगेगा तुझे।'
रूना ने सिर पकड़ लिया, 'पहले से कम लगा है क्या मां? और श्राप क्यों दे रही हो? शांत हो जाओ। मैं

बरनी से बात करूंगी।'
'बरनी से नहीं, अंजुमन से बात करेगी। मैं कहे देती हूं, जब तक तू उससे माफी नहीं मांगेगी, मैं खाना नहीं खाऊंगी। पानी भी नहीं पियूंगी। आज से अभी से भूख हड़ताल...'

रूना कंधे उचकाकर वहां से चली गई। मां को पीछे छोड़ कर। पता है, उसकी मां भूखी नहीं रह सकतीं। शाम होते-होते खुद आ जाएंगी किचन में। कुछ बनवाने। खाने।
पर शाम हो गई, रात भी होने को आई। मां अपनी जगह से टस से मस ना हुईं। बरनी का फोन 'बरनी से नहीं, अंजुमन से बात करेगी। मैं कहे देती हूं, जब तक तू उससे माफी नहीं मांगेगी, मैं खाना नहीं खाऊंगी। पानी भी नहीं पियूंगी। आज से अभी से भूख हड़ताल...'
रूना कंधे उचकाकर वहां से चली गई। मां को पीछे छोड़ कर। पता है, उसकी मां भूखी नहीं रह सकतीं। शाम होते-होते खुद आ जाएंगी किचन में। कुछ बनवाने। खाने।

पर शाम हो गई, रात भी होने को आई। मां अपनी जगह से टस से मस ना हुईं। बरनी का फोन आया, 'दीदी, मां को क्या हो गया? तुमने कुछ कह दिया क्या? कह रही है खाना-पीना छोड़ दिया है।'
'सब तेरे लिए है बरनी। तेरे और मोंटू के लिए। किसी फॉक्स डॉक्टर को पकड़कर लाई थी मोंटू की मोबाइल की बीमारी का इलाज करवाने। मैंने डॉक्टर को चैलेंज कर दिया तो मां नाराज हो गईं।'
'ऐसा क्यों कर रही हो दीदी? पता है ना मां लो बीपी की मरीज हैं। नहीं खाएंगी तो शुगर और भी नीचे चला जाएगा। मां को नाराज मत किया करो दी...'

रूना का मन हुआ, अपनी छोटी बहन का गला पकड़ ले, कमबख्तों, तुम लोग नहीं रख पाए मां को, यहां भेज दिया और मुझसे कह रहे हो मां को नाराज मत कर। रूना की आवाज सख्त हो गई, 'बहन, तुझे इतनी चिंता है तो आकर उन्हें मना ले। देख, मैं तो ऐसी ही हूं। देखती हूं कब तक नहीं खाती?'

'मोंटू के एग्जाम ना होते तो आ जाती दीदी। प्लीज संभाल लो। मैं दस-पंद्रह दिन में आ जाऊंगी। तुम कहोगी तो कुछ दिन के लिए मां को अपने साथ ले जाऊंगी। मेरी सास चार धाम के लिए बाहर जा रही हैं।'
रूना ने कुछ कहा नहीं। बहन मां को तभी अपने पास रख सकती हैं जब सास साथ ना हो। भाई तभी रख सकता है, जब बीवी मायके गई हो। वो कब रख सकती है, इस बारे में किसी को परवाह नहीं है।

बरनी की बातों को सिर से झटक रूना ने मां के कमरे में झांका। वो दुपट्टे से मुंह ढांके औंधी पीठ पड़ी हुई थी। रूना ने उनके कान के पास जाकर कहा, 'मां, कुछ खा लो। तबीयत खराब हो जाएगी। बच्चों जैसा क्यों कर रही हो?'

मां पलटीं। उनकी आंखें लाल हो रखी थीं, 'मैं करूंगी। बच्चों जैसा करूंगी। पागल हूं ना, ना हूं तो होकर दिखाऊंगी। पर खाना नहीं खाऊंगी। जा तू खा ले। सब खा ले। मेरी आंखों से दूर हो जा।'

'मां...' रूना जोर से बोली, 'एक पागल औरत आकर कुछ बक गई और तुमने गंभीरता से ले लिया। उठो मां। बरनी भी आएगी यहां जल्दी। तुम थोड़े दिनों के लिए चली जाना उसके साथ। देखो, जिंदा रहोगी तभी तो जाओगी अपनी प्यारी छोटी बेटी के पास। गरम दूध ला दूं?'
'नहीं,' मां एकदम जोर से चिल्लाई, 'मैं मर जाऊं तो ही अच्छा है।'

रूना कमरे से बाहर आ गई। पर चिंता बढ़ गई। मां इस तरह खाना छोड़ देंगी सोचा नहीं था। किसी तरह दोनों मां-बेटियों की भूखी-सूखी रात बीती। रूना की नींद जल्दी उचट गई। मां कमरे में सो रही थी। माथे पर

हाथ रखा, गरम था। रूना चाय बना लाई। मां के कानों के पास जाकर धीरे से बोली, 'चाय बिस्कट लाई हूं। उठो...'
मां गला खंखारकर उठी। चाय का कप हाथों में पकड़ा, बिस्किट मुंह तक ले जाने को हुई फिर एकदम से दूर फेंक दिया। कप तिपाई पर रख फिर से लेट गई। रूना का चेहरा लटक गया। मां का चेहरा अपनी तरफ करके बोली, 'ऐसा क्यों कर रही हो मां? अच्छा, प्रॉमिस, मैं तुम्हारी काली टाई वाली औरत को शाम को घर लेकर आऊंगी। माफी भी मांग लूंगी। पर तुम मेरी बात मान लो। कुछ खा लो।'
मां की आंखों में हल्की सी चमक आई। चाय का कप हाथ में उठा लिया। धीरे से घूंट भरकर बोलीं,

'सच्ची कह रही है ना तू? देख, झूठ बोलेगी तो मैं तुझ पर कभी यकीन नहीं करूंगी।'
रूना ने उनका सिर हलके से थपथपाया। पूरा शरीर गरम हो रखा था। कुछ खिलाने के बाद दवा देनी होगी। शरीर कमजोर हो रहा है, बस अकल की धार नहीं घिस रही।
रूना तैयार होकर मां को नाश्ता खिलाकर स्कूल के लिए निकली। उसने अंजुमन के नंबर पर फोन किया। नंबर पर लंबी-लंबी घंटी जाती रही। किसी ने नहीं उठाया। उसने मैसेज छोड़ा, किसी भी तरह शाम को घर आकर मां से मिल लें। मैसेज का भी कोई जवाब नहीं आया।

स्कूल में पढ़ा रही थी, पर ध्यान में मां थी, अंजुमन थी। पता नहीं, मां ने लंच किया होगा या नहीं। घर जाकर मां सवाल पूछेगी तो क्या जवाब देगी?
स्कूल छूटने के बाद घर जाने में कोई उत्साह नहीं था। रास्ते में रह-रहकर आंखें चौकन्नी हो रही थीं। शायद कहीं दिख जाए वो पांच फुट की पगलिया। काला सा कुछ आंखों के सामने से गुजरता तो लपककर वो पीछे पड़ जाती। क्या पता, काली टाई हो मोहतरमा की।

रास्ता खत्म हो गया, घर आ गया। पर जादूगरनी का कोई लच्छन नजर नहीं आया।
मां खिड़की का सींकचा पकड़े खड़ी थीं। आंखें दुबला गई, चेहरा ढला सा। रूना का चेहरा देखा, फिर धीरे से कहा, 'झूठ कहा तूने। साथ लेकर आएगी।'
'मैंने कई बार फोन किया मां। वो उठा नहीं रहीं।'

मां सिर हिलाने लगीं, गुड़िया की तरह, फिर तड़पकर बोलीं, 'मैंने भी लगाया। वो उठा नहीं रहीं। नाराज है मुझसे। अब तो जरूर जादू कर देगी।'
'कुछ नहीं करेगी। वो रोज ना जाने कितनों से मिलती होगी। सब पर जादू करने लगेगी तो खेल खत्म हो जाएगा। मैं ढूंढ़ रही हूं। मिल जाएगी।'
मां ने कुछ कहा नहीं। बस चेहरा सुजाए बिस्तर पर जाकर लेट गईं। रूना घर से बाहर निकल आई। उसके स्कूल के कुछ विद्यार्थी ट्यूशन के बाद घर जा रहे थे। रूना ने इशारे से उन्हें बुलाया। एक सींकिया सा लड़का दौड़ता हुआ उसके पास आया।

'क्या नाम है तुम्हारा? कौन सी क्लास में पढ़ते हो?'
'मैडम जी, सच्छम, कक्षा सात। याद नहीं, कल हाथ में डस्टर से कसकर दिया था आपने।'
रूना चुप हो गई। पर बच्चा हुलसकर ऐसे बोल रहा था मानो उसे प्रसाद मिला हो।
रूना ने रुककर पूछा, 'तुम खंभे पर चढ़ सकते हो?'

गणित सिखाने वाली मैडम को खेल की बातें करता देख लड़का गदगद हो गया, 'जी मैडम। बिलकुल। दो सेकंड में किसी भी खंभे पर चढ़ सकते हैं। दिखाएं आपको?'

'तुम्हारे पास मोटी वाली पेन है?'
लड़के ने अपना कंपास बॉक्स खोलकर दिखाया। उसमें हाइलाइटर था। रूना ने हाथ में ले लिया और स्पष्ट आवाज में बोली, 'ये जो सामने खंबा देख रहे हो, उस पर चढ़कर जो पोस्टर लगा है ना, उसके नीचे लिखना है, माता जी याद कर रही हैं। जल्दी से घर आओ।'
लड़का उत्तेजित होकर तुरंत खंभे पर चढ़ गया। उसे मास्टरनी का बताया जितना याद था, लिख दिया, मास्टरनी याद करे हे। जलदी आओ।

रूना ने उसे नीचे उतरने का इशारा किया। आगे के दो-तीन खंभों पर भी ऐसा ही कुछ लिखवा दिया।
लड़का थक गया। रूना ने तय किया अगली बार लड़के को गणित के एक्जाम में फेल नहीं करेगी। एक नहीं तो क्या, दूसरा हुनर तो है उसके पास। जी लेगा। कैसे भी। गणित हो या ना हो।

लड़का चला गया। वो भी घर आ गई। शाम ढल गई। अकेले चाय पीने में जरा भी मजा नहीं आया, पी ही नहीं गई। रात होने लगी। खिचड़ी बनाने के लिए कुकर चढ़ाकर मां को देखने आई। मां लगभग बेहोश सी बिस्तर पर पड़ी थी। रूना ने झिंझोडकर कहा, 'मां, सच कह रही हूं। मैंने बहुत कोशिश की, अंजुमन से मिलने की। नहीं मिल रही है मां। तुम समझो ना, प्लीज। उठ जाओ। हाथ-मुंह धोकर कुछ खा लो।'
मां नहीं उठी, पर घर की घंटी बज गई। रूना ने उठकर दरवाजा खोला। वो खड़ी थी, काली टाई वाली। स्टाइल से, दरवाजे पर टेक लगाए।

'मैंने सुना, मास्टरनी मेरी खोजबीन कर रही है...'
रूना ने दरवाजे से हटकर रास्ता बनाया, 'हां, तुमने मां पर ना जाने क्या जादू कर दिया है। हम दोनों फोन लगा रहे हैं। तुम उठा नहीं रहीं।'
'किसी पॉकेट मार ने मोबाइल पर हाथ साफ कर लिया था।' अंजुमन हल्की आवाज में बोली।
'किसकी हिम्मत हुई तुम्हारा मोबाइल चुराने की? जादू काम ना आया?'

'आया ना। मैंने जब अपने नंबर पर कॉल लगाया तो कांपते हुए बोला, आधे घंटे में मोहन हलवाई की दुकान पर पहुंचकर मोबाइल लेकर जाओ। कहने लगा, जब भी फोन हाथ में उठाता है, लगता है भूचाल सा आ जाता है। कस्सम से अब मैं ये काम कभी नहीं करूंगा।'
अंजुमन कहते-कहते कमरे में आ गई। ऐसा लग रहा था जैसे यह चवन्नी छाप कहानी सुनाकर मास्टरी का मजाक उड़ा रही हो। ठसके से सोफे पर बैठती हुई बोली, 'क्या हुआ मास्टरनी? इतना याद क्यों कर रही थी? जगह-जगह खंभे पर संदेश देखे तुम्हारे।'
रूना ने ध्यान से उसका चेहरा देखा, इस समय थोड़े घमंड में थी।

'मां को लग रहा है तुम उनकी दिक्कतें दूर कर सकती हो। खाना-पीना छोड़ रखा है।'
अंजुमन अजीब तरीके से सिर हिलाने लगी। फिर बोली, 'मां समझदार हैं। तर्क नहीं करती। बस उनको काम पूरा होने से मतलब है। कोई नहीं, मैं करूंगी उनका इलाज। कहां है?'

अंजुमन की आवाज सुनकर मां खुद कमरे से उठकर आ गईं। दो दिन में एकदम ढल गई थीं। चेहरा पिचका हुआ। आगे आकर अंजुमन का हाथ पकड़ लिया, 'तुम आ गई। अच्छा किया। मास्टरनी ने माफी मांगी तुमसे? देखो बेटी, ये दिल की बुरी नहीं है। इसका बुरा मत करना। मैं एक मां हूं, हर बच्चे का भला चाहती हूं। इसका भी।'
'समझ गई। बोलो तुम्हें क्या दिक्कत है?'

मां उसके पास सोफे पर चिपककर बैठ गई, 'मेरा अपना दुख बहुत बड़ा नहीं है। मुझे अपने बच्चों की चिंता ज्यादा है। वो छोटी बेटी है ना, बेचारी है। नौकरी नहीं करती। पति गुस्सैल है। बेटा एक नंबर का गधा है। पढ़ाई में बिलकुल ध्यान नहीं देता। हर समय बस मोबाइल मोबाइल। हाथ में गांठ पड़ गई है। आंखें खराब हो गई हैं। बाहर खेलना-कूदना सब बंद है। चौबीस घंटे कमरे में बंद रहता है, दोस्तों से चैटिंग, रील देखना, फेसबुक अलामा ढिमाका... चौदह साल का हो गया है। दो बार फेल हो गया है। बेटी परेशान रहती है। उसका आदमी गुस्सा करता है उस पर। बेटे को मारता है। मैं मैं...' मां कहते-कहते हांफने लगी।

अंजुमन के चेहरे पर अजीब सी मुस्कान आई, 'सबका यही हाल है अम्मा जी। ये मोबाइल की लत, वो क्या है महामारी की तरह है। अभी हमें नहीं पता कितना नुकसान कर जाएगा। दस साल, बीस साल बाद देखिए, बच्चे-बूढ़े जोम्बी की तरह मिलेंगे। प्रेत की तरह सड़कों पर दिखेंगे, जिनकी आंखों में दूरबीन लगा होगी और हाथों में मोबाइल। किसी काम के नहीं रहेंगे। मर जाएंगे हाथ चलाते-चलाते। तभी तो कहती हूं, समय रहते इलाज करा लो।'

इस बार रूना भी चुप रही।
चाय बना लाई। साथ में खारी बिस्किट भी।
अंजुमन ने चाय में बिस्किट डुबोकर खाया। फिर पैंट से हाथ पोंछती हुई बोली, 'अब बताओ माता जी, कहां से शुरू करना है? लड़का कहां है?'
'लड़का तो भोपाल में है। पर सुनो। पहले मेरा इलाज करो। मैं संतुष्ट हो जाऊं, मुझ पर काम कर जाए तब मोंटू का करना।'

'आपको क्या दिक्कत है?' अंजुमन दमक गई।
'अरे, मेरे हाथ से भी तो मोबाइल ना छूटता। दिन भर देखती रहती हूं अल्लम-गल्लम।'
रूना बीच में टपक पड़ी, 'मां, तुम्हारी बात अलग है। तुम टीवी भी देखती हो। गॉसिप भी करती हो। लड़ती भी हो। मोबाइल में कभी-कभार कोई रील देख लेती हो। तुम्हें तो ठीक से व्हाटसऐप चैट का भी जवाब देना नहीं आता। तुम दूर रहो।'

'नहीं। मुझे भी लत है मोबाइल की। अंजुमन, जो करना है पहले मेरे साथ करो। दवाई दो, जादू करो। कुछ भी। मैं ठीक हो जाऊंगी, फिर बच्चे का करना।' मां ने जिद में आकर कहा।
रूना परेशान हो गई। अंजुमन उठ गई, 'ठीक है माताजी, आज तो रात हो गई। कल से शुरू करते हैं आपका इलाज...'

अंजुमन के जाने के बाद मां चहकने लगीं। कहने लगीं, 'अब देखना मोंटू ठीक हो जाएगा। वैसे होशियार लड़का है। बस मोबाइल का बीमार हो गया। इलाज हो जाएगा तो देखना, एकदम टॉप क्लास पढ़ेगा।'
रूना खिचड़ी बनाकर लाई थी। मां को चम्मच से खिलाती हुई बोली, 'कहां फंस रही हो माते? अंजुमन और उस जैसे लोग डॉक्टरी के नाम पर फ्रॉड करते हैं। लोगों की दुखती रंग पर उंगली रखकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। मोबाइल की लत को ठीक करेगा एक साइकोलॉजिस्ट। वो समझाएगा, दवाई देगा, ध्यान भटकाने को कहेगा, तब जाकर होगा ठीक।'

'वही तो अंजुमन भी करेगी। बस नाम दूसरा दे दिया है। डॉक्टर लोग सफेद कोट पहनते हैं, ये काली टाई पहनती है। इससे ये घटिया और वो बढ़िया हो गए क्या? इसे भी अपना काम आता होगा। इसलिए तो मैं पहले अपना इलाज करवा रही हूं। गड़बड़ हो तो मेरे साथ हो। फिर मोंटू का करवाएंगे।'

रूना ने मां को हर तरह से समझाने की कोशिश की। मां अड़ गई कि वो कल अपना इलाज करवाके रहेंगी। सुबह मां खुशी-खुशी सोकर उठीं। रूना ने झक मारकर स्कूल से छुट्टी ले ली। लगभग ग्यारह बजे अंजुमन घर पर आई। अपने साथ वो डॉक्टरी बैग भी लेकर आई थी।

लाल-पीली छोटी-छोटी गोलियां और पतली सी बोतल में खुशबूदार द्रव।
रूना डर गई। मां के ऊपर ये प्रयोग कहीं गलत तो नहीं हो जाएगा। उसने अंजुमन का हाथ पकड़ लिया, 'तुम्हें पता है ना तुम क्या कर रही हो?'

अंजुमन ने घूरकर देखा, 'तुम जब स्कूल में पढ़ाती हो तो बच्चे सवाल करते हैं कि यह क्या पढ़ा रही हो?'
अंजुमन ने मेज पर दवाइयों का बाजार लगाया। पीली और नीली गोलियों को कूटकर मां को पानी के साथ लेने को कहा। मां ने मुंह बनाकर कहा, 'मेरी बीमारी ज्यादा है। मैं दवाइयों से ठीक ना होने की। मुझ पर तो वो अपना राम बाण क्या है काला जादू करो।'

अंजुमन ने सिर हिलाते हुए कहा, 'आपको जरूरत नहीं है माता जी। आप दवाइयों से ठीक हो जाओगी।'
'ना, बिलकुल नहीं। मैं ना होती ठीक। तुम तो बस वो करके दिखाओ। जादू ...'
रूना सकते में आ गई। मां के कान के पास जाकर फुसफुसाकर बोली, 'दिमाग चल गया है क्या?

इस उम्र में जादू-टोना करवाओगी? बस करो मां। दवाइयां खाओ और जादूगरनी को दफा करो।'
मां फुफकारती हुई बोली, 'बच्चा समझा है क्या? मुझे मत सिखा। मुझे पता है क्या करना है। तू अलग रह। डॉक्टरनी को अपना काम करने दे।'

डॉक्टरनी? एक छद्मी दवाफरोश को इतनी इज्जत? अंजुमन उसे पीछे ढकेलकर आगे आ गई, 'माता जी, जो आपको लगे, मैं वही करूंगी। आखिर मरीज आप हो। अच्छा मैं जब टोना करूंगी तो कमरे में आपके और मेरे सिवाय कोई ना होगा...'
मां ने रूना को कमरे से जाने का इशारा किया। रूना टस से मस ना हुई। अबकि मां ने कड़ाई से कहा, 'बाहर निकल। काम करने दे इसे। मुझे बीमारी का ठीक से इलाज करवाना है।'

बेमन से रूना कमरे से बाहर निकली। बरामदे में जाकर अपनी बहन को फोन लगाया। बरनी के फोन उठाते ही रूना जैसे फट पड़ी, 'मां जादू-टोना करवा रही हैं। एक ना सुन रही मेरी। पता है क्यों? तेरे बेटे के लिए।'
बरनी रुआंसी आवाज में बोली, 'मां को क्या पागलपन सूझ गया? फिर मां के इलाज करवाने से मोंटू थोड़े ही ठीक हो जाएगा? कल रात फिर उसने पापा से मार खाई है। पर मजाल कि मोबाइल छोड़ दिया हो। पापा ने उसका मोबाइल छिपा दिया, तो सुबह से मेरा मोबाइल हथिया रखा है। क्या करूं दी? मैं मोंटू के लिए परेशान रहूं या मां के लिए?'

रूना रुक गई, बहन को कितना परेशान करे।
'अच्छा सुन, बाद में बात करती हूं। लगता है अंजुमन बाहर आ रही है...'
दस मिनट बाद कमरे का दरवाजा खुला। रूना झटपट अंदर गई। मां आंखें बंद कर सोफे पर लेटी थीं। उनके दाहिने बाजू में काले रंग के धागे में एक तांबे की ताबीज बंधी थी। माथे पर काले रंग से बना त्रिपुंड।
रूना झटपट उनके पास चली आई, 'मां, मां, तुम ठीक तो हो?'

अंजुमन ने भारी आवाज में कहा, 'अभी कुछ नहीं बोलेंगी। गहरी नींद में है। नींद में ही अपनी गलत आदतें, लत छोड़ देंगी। उठेंगी तो एकदम नई बन कर।'

‘नई मतलब?’ रूना अकबका गई।
अंजुमन शांत आवाज में बोली, ‘मैंने इनका दिमाग खाली कर दिया है। समझी, क्या कहते हैं डिटॉक्स। अब इन्हें पुराना कुछ याद नहीं रहेगा।’

रूना हल्के से चीखी, ‘पुरानी बातें भूल जाएंगी? इसका क्या मतलब है?’
‘हो भी सकता है, नहीं भी। कुछ बातें याद भी रह सकती है। यह तो बीमारी पर निर्भर करता है। जितनी बुरी बीमारी, उतना गहरा इलाज।’
रूना ने अपना आपा खो दिया, लपककर अंजुमन की काली टाई पकड़ ली, ‘पाखंडी कहीं की। पता नहीं क्या खिलाती हो बीमारी भगाने के नाम पर कि लोग याददाश्त भूल जाएं। रुको तुम। तुम्हें पुलिस के हवाले ना किया तो देखना।’

‘पुलिस? मैंने तो पहले ही बता दिया था मैं क्या करने वाली हूं। तुम्हारी मां ने इजाजत दी थी। फिर मेरी गलती कैसे हुई?’
‘ऐसे हुई कि तुमने बहकाया है मां को। पहले क्यों नहीं बताया कि वो अपना पहले का सब भूल जाएंगी?’ रूना हांफती हुई बोली। मुंह से झाग सा निकलने लगा। अंजुमन उसकी पकड़ से अपने को बचाने की पूरी कोशिश कर रही थी।

‘छोड़ दो मुझे, जाने दो। मेरे मरीज मेरा इंतजार कर रहे हैं...’
अंजुमन चीखी, पर रूना की पकड़ मजबूत थी, ‘पहले मेरी मां को होश में ला कमीनी। अगर मां तुरंत होश में नहीं आई तो तेरी खैर नहीं!’

अंजुमन और रूना के बीच हाथापाई होने लगी। रूना ने अंजुमन की काली टाई पकड़कर उसे जोर से खींचा। अंजुमन मुंह के बल गिर गई।
रूना ने पीछे से उसकी पीठ पर मुक्का जमाते हुए कहा, ‘जब तक मां होश में नहीं आतीं, तू यहीं रहेगी। मां अगर अपना अगला-पिछला कुछ भी भूलती हैं, तो तुझे छोड़ूंगी नहीं। मैं पुलिस बुला रही हूं। ठग हो तुम, स्काउंड्रल हो। लोगों की भावनाओं का फायदा उठाकर पैसे बनाती हो। अब जेल में बैठकर करना काला जादू...’

अंजुमन दर्द से कराहते हुए बोली, ‘मैंने कुछ गलत नहीं किया। कुछ भी नहीं। हम अपनी मेहनत का खाते हैं। तुम बताओ बहन, अगर हम पुराना भूलेंगे नहीं तो नया सीखेंगे कैसे? लत पुरानी है, तो पुराना छोड़ना पड़ता है। अपने भीतर नया भरना पड़ता है...’

रूना ने उसे दबोचे रखा। अबकी अंजुमन गिड़गिड़ाई, ‘मुझे छोड़ोगी नहीं तो मां को होश में कैसे लाऊंगी? मेरा हाथ छोड़ दो...’
रूना ने उसका हाथ छोड़ दिया। अब उसे अपने ऊपर गुस्सा आ रहा था। उसने मां की बात क्यों मान ली? इस औरत के साथ अकेले कैसे छोड़ दिया?

अंजुमन मां के पास बैठ गई। बांह से खींचकर ताबीज उतार लिया। माथे पर बना त्रिपुंड अपनी जेब में रखे रूमाल से पोंछ दिया। मां के दुपट्टे में बंधी गांठ खोल दी, उसमें कुछ काला रंग पुता चावल और चमकती हुई मोती थे।

मां के कान के पास जाकर उसने जोर से कुछ फूंका।

वह दूर जाकर बैठ गई और हांफती हुई बोली, 'होश आ जाएगा अभी। मैंने अपना किया निकाल दिया...'
अंजुमन ने अपना सामान संभाला और दरवाजा खोलने को हुई। रूना ने लपककर फिर से उसकी टाई पकड़ ली। अबकि टाई का आधा हिस्सा उसके हाथ में रह गया और बचे आधे हिस्से के साथ अंजुमन घर से बाहर हो गई। रूना चिल्लाती रही, पर अंजुमन रुकी नहीं। वो ऐसे बगटुट भागी कि पीछे कोई निशान ही नहीं छोड़ा।

--

मां को होश आया, उठीं भी। पर उनकी आंखें कहीं भी रुक नहीं पा रही थीं। हाथ थिर नहीं पा रहे थे। होंठ रुक नहीं पा रहे थे। रूना को देखकर ठहर जातीं, पहचानने की कोशिश करतीं, फिर मुंह नीचे कर लेतीं। जैसे होमवर्क ना करने पर विद्यार्थी टीचर को देखकर करते हैं। रूना फौरन मां को अस्पताल ले गई। सब ठीक है। डॉक्टर ने कहा। अच्छा खिलाओ-पिलाओ, लोगों के साथ रहने दो। किसी बात से धक्का लगा है, समय के साथ ठीक हो जाएंगी।

रूना ने उनके हाथ में मोबाइल देने की कोशिश की, मां ने छटपटाकर दूर फेंक दिया। ना वो बोलतीं ना सुनतीं। पर मन ही मन गुनगुन किए रहतीं।
उनसे यह भी बोलते नहीं बन रहा था कि मोंटू के लिए यह इलाज सही है या गलत।
खबर पाकर बरनी मोंटू को लिए भागी-भागी आई, फिर भाई। रूना डर रही थी, सब उस पर चढ़ दौड़ेंगे, मां को ऐसे कैसे एक जाली डॉक्टर को सौंप दिया। पर किसी ने कुछ कहा नहीं। सबसे पहले भाई ने कहा, 'मां को मैं साथ ले जाता हूं। शायद मेरी बीवी से मिलकर कुछ पुराना याद आ जाए।'

बरनी ने उस समय कुछ नहीं कहा, पर रात को रूना से लिपटकर भावुक होकर बोली, 'दीदी, मां ने अपने ऊपर ले लिया ना। वो हमें बताना चाहती थी कि इलाज के बाद मरीज का हाल क्या हो जाता है। दीदी, सुनो ना। मां पुराना भूल गई हैं। उनकी उम्र नया सीखने की नहीं है। मोंटू तो लड़का है। पुराना भूलता है, भूल जाए। नया हम सिखा देंगे।

कम से कम यह भूत सी लत तो छूटेगी। अभी तो यह हाल है कि दीदी कि किसी दिन अपने पापा के ही हाथों जान गंवा देगा। उससे अच्छा है... दीदी, प्लीज एक बार फिर से उसको बुला दो...'
'किसे?' डर के मारे रूना का मुंह खुला का खुला रह गया।
घर के नीचे से फटा पोस्टर उठा लाई थी कमबख्त, रूना की आंखों के सामने रख दिया, मोबाइल के मरीजों की डॉक्टर...

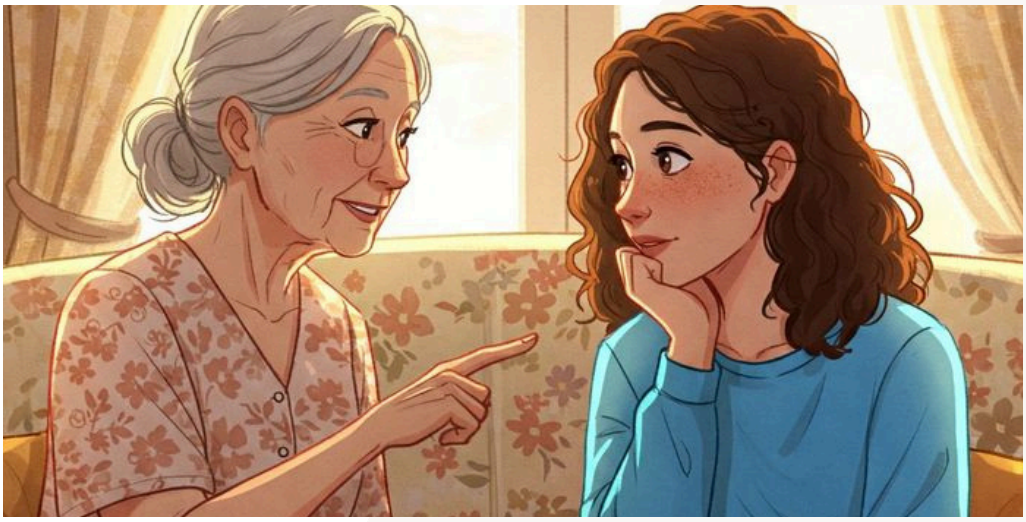

◇.....◇

घोर कलियुग

हाइंस वरनर वेस्लर
भाषा विज्ञान और वाङ्मयशास्त्र विभाग, उप्साला विश्वविद्यालय, स्वीडन

बॉस्टन से दिल्ली की उड़ान हमेशा की तरह लंबी थी। चूँकि कोई सीधी कनेक्टिंग-फ़्लाइट नहीं मिली थी; मैं रात की ट्रेन पकड़कर गोरखपुर पहुँचा था। मैं लगभग भूल ही गया था कि ट्रेन में मैं कितनी अच्छी नींद ले लेता हूँ। भोर होते-होते मेरी आँख खुली और मैंने इस यात्रा का पहला भारतीय चाय का प्याला पिया। सुबह-सुबह जैसे ही टिकट कलेक्टर ने पुकारा, "गोरखपुर जंक्शन!" मेरा दिल तेज़ी से धड़क उठा। मुझे पता था कि अब ट्रेन उन परिचित खेतों के बीच से गुज़रेगी, जिन पर सर्दियों की धुंध ऐसे फैली होती है जैसे किसी मैले कपड़े का पर्दा।

उस सुबह स्टेशन पर पिताजी मुझे लेने आए थे, जिसके लिए उन्होंने दफ़्तर में देर से पहुँचने का जोखिम उठाया था। घर में वही पुरानी महक थी - चमेली के फूल, गीला सीमेंट, इलायची की गाढ़ी खुशबू और रसोई में कहीं जलता हुआ कैरोसीन का चूल्हा। आँगन के दरवाज़े पर दादाजी बैठे थे, कम्बल में लिपटे हुए, मानो वह कम्बल उनकी त्वचा का ही हिस्सा हो। अब वे बूढ़े, सफ़ेद बालों वाले दादाजी थे, मेरे बचपन के साथी, जिनसे मैंने जीवन की पहली सीखें ली थीं। बगल में थी उनकी वही पुरानी लाठी, जो बरसों से उनकी साथी थी। मैंने झुककर उनके चरण छुए। उन्होंने मेरे सिर पर हाथ रखा तो उनकी हथेली हल्के-हल्के काँप रही थी।

"जीते रहो... घोर कलियुग, घोर कलियुग..." वे बुदबुदाए। फिर से वही वाक्य दोहराया – लगा कि जैसे उनके शब्द किसी गहरे कुएँ में गिरते जा रहे हों। पीछे से माँ की आवाज़ आई, "यही तो अब दिन-रात कहते रहते हैं।" उन्होंने परवाह भी नहीं की कि दादाजी यह सुन सकते हैं। कुछ सालों से मैं उन्हें अमेरिका से पैसे भेजता रहा था, ताकि हफ़्ते में कुछ दिन कोई उन्हें नहला-धुला दे। इन दो वर्षों में, जब मैंने उन्हें आख़िरी बार देखा था, अब वे प्रत्यक्षतः बूढ़े हो गए थे। माँ ने कहा, "अब कुछ-कुछ सनकी हो गए हैं।"

तभी मेरे मन में पुराने दृश्य तैर गए – तब मैं शायद छह बरस का था, अपनी काली एटलस साइकिल के कैरियर पर बैठाकर वे मुझे स्कूल ले जा रहे थे। तब भी यह कुछ पुराना-सा तरीका था। जो लोग थोड़े सम्पन्न थे, उनके पास मोटरसाइकिल्स होती थीं। ठंडी सुबह में वे सड़क किनारे लगे नए बिजली के खंभे दिखाकर कहते, "बेटा, यह भविष्य है। जल्द ही हर घर में रोशनी होगी।" असल में उस समय हमारे मोहल्ले के ज़्यादातर घरों में बिजली पहले से थी। या फिर उस शाम, जब वे छोटा ट्रांजिस्टर-रेडियो खोलकर सुधार रहे थे। मैं पास बैठा देख रहा था कि वे कैसे नन्हें-से पेचकस से पेच खोल रहे थे। "तरक्क़ी का मतलब है कि हम ख़ुद समझना सीखें, सिर्फ़ इस्तेमाल करना नहीं।" उस समय, उनकी नज़र में दुनिया खुली, उजली जगह थी, जिसमें हम सब बढ़ते चले जा रहे थे। वे कहा करते, "जल्द ही भारत एक बड़ा, उन्नत देश होगा, जहाँ सबको काम और रोटी मिलेगी।"

मैंने उन्हें हमेशा एक धर्मनिष्ठ हिन्दू के रूप में देखा था - सोमवार का व्रत जीवन-भर निभाते रहे। घर में माँ और बाक़ी लोग चुपचाप सुनते, जब वे भगवद् गीता या गोरखनाथ की वाणी पर प्रवचन देते। बचपन में मैं उनके उपदेशों पर ज़्यादा ध्यान नहीं देता था - नचिकेता, हनुमान,आत्मज्ञान - ये सब मेरे लिए दूर की बातें थीं। अब समझ आता है कि अगर दादाजी न होते, तो मुझे अपने धर्म का कुछ ज्ञान ही न होता। लेकिन अब जो दादाजी मेरे सामने थे, वे अलग ही व्यक्ति लग रहे थे। थकान सिर्फ़ शरीर में नहीं, उनके दिल में भी थी।

शाम को माँ ने रसोई में रोटियाँ बेलते हुए कहा, “ये और बिगड़ते जा रहे हैं। पहले रोज़ सुबह पूजा करते थे; अब कहते हैं, ‘बेकार है, इसका कोई मतलब नहीं।’ थोड़ी-बहुत निराशा तो उनमें पहले भी थी – कभी कभी कहते कि अंततः सब माया है, मनुष्य का कर्म व्यर्थ है; फिर भी वे एक विकसित भारत की उम्मीद बनाए रखते थे।

“लेकिन भारत तो आगे बढ़ रहा है, गाँवों में सौर ऊर्जा, ज़्यादा स्कूल, स्टार्ट-अप्स, अंतरिक्ष कार्यक्रम, तेज़ रेलगाड़ियाँ... भारत एक महाशक्ति है!” मैंने कहा।
माँ ने कंधे उचका दिए, “कह दो उन्हें। पर वे वही सुनेंगे, जो सुनना चाहेंगे।”

अगली सुबह मैं उनके पास आँगन में बैठा था। सर्द धुंध में वाहनों का धुआँ और जले-खेतों की गंध घुली हुई थी। मैंने युवाओं के नए आविष्कारों, उपग्रहों और गोरखपुर-लखनऊ एक्सप्रेस-वे की बातें कीं। वे सुनते रहे, हल्का मुस्कुराए भी।

“हो सकता है, बेटा, पर कलियुग तो कलियुग है। अब लोग मशीनें ज़्यादा बना सकते हैं, पर मन में शांति कम है। सब सिर्फ़ पैसा कमाने में लगे हैं, अगर दाम मिल जाए तो वे माँ को भी बेच देंगे। अमरीका में खुश रहो बेटा। अमरीका सही है। घोर कलियुग।” उनकी आँखों में एक दृढ़, शांत दीवार थी।
“दादाजी, आपके दाँत बनवा दें? शर्मा डॉक्टर के पास चलें?” मैंने बात को मोड़ते हुए कहा।
“डॉक्टर शर्मा? याद है तुम्हें? बरसों से उनके बारे में कुछ सुना नहीं।” वे मुस्कराते हुए बोले। बात वहीं ख़त्म हो गई।

तीन हफ़्ते ऐसे ही बीत गए - माँ का विशेष खाना, बार-बार चाय, बाज़ार जाना, पुराने दोस्तों से मिलना और बीच-बीच में घर की ख़ामोशी में दादाजी की खाँसी और उनका धीमे से कह उठना, “घोर कलियुग...”
बॉस्टन लौटा तो वहाँ सर्दी का मौसम था। गगनचुंबी इमारतों के बीच का आकाश सख़्त और साफ़ था। दफ़्तर में दोस्तों ने छुट्टी के बारे में पूछा। मैंने लंबी ट्रेन यात्राओं, दावतों और टहलने की बातें कीं पर दादाजी के शब्द नहीं बताए।

दो महीने बाद, आधी रात पिताजी का फ़ोन आया। स्क्रीन देखते ही समझ गया कि बुरी ख़बर है - सचमुच दादाजी नहीं रहे। सभी को अंदाज़ा था, पर यह ख़बर सुनकर जैसे बचपन से जुड़ा अंतिम धागा टूट गया। माँ ने कहा कि वे समझ सकती हैं कि मैं अभी नहीं आ सकता।

अब दिसंबर की ठंडी बदनसीब बारिश में चलते हुए, जब 'जिंगल बेल्स' की वही बेवकूफ़ाना, बार-बार दोहराई जाने वाली ध्वनि खुले शॉपिंग सेंटरों से निकलकर ठंडी सड़क पर फैलती रहती है, दो ट्रैफ़िक लाइटों के बीच, मुझे लौटकर अपना उधर का आँगन याद आता है - वही धुंध, वही कम्बल, वही धीमी आवाज़, “घोर कलियुग...” और मैं सोचता हूँ कि क्या दादाजी का घोर कलियुग अब मेरे भीतर भी घर कर चुका है?

शायद कलियुग केवल एक युग नहीं, यह एक दृष्टि है, जो दिल में एक बार बस जाए, तो फिर कभी नहीं जाती। ख़ैर छोड़ दो, मैं अपने से कहता हूँ, कहाँ ले जाएंगे मुझे ये ख्यालात। अपने दिल को हल्का करने के लिए आने वाले वसंत की योजनाएं करने लगा मन में। बहुत दिनों से माउंटेन बाइक लेकर केप कॉड में एक टूर करने का इरादा था। करूँगा ही दोस्तों के साथ।

◇.....◇

दांतों का प्रेम प्रसंग

अनिल जोशी
वैश्विक हिंदी परिवार के संस्थापक अध्यक्ष, लेखक, आलोचक, प्रवासी साहित्य के अध्येता।

जवानी में लोगों को अलग तरह के शौक होते हैं; जैसे क्रिकेट खेलना, बॉडी बनाना, सुंदर लड़कियों के घरों के चक्कर लगाना, पैसे और ताकत के लिए टेढ़े-मेढ़े रास्ते अपनाना।पर सीनियर-सिटीज़न्स अपने चेहरे पर अलग किस्म का मास्क लगा लेते हैं, पूरे वैष्णव। उनके शौक भी सादा और वैष्णव हो जाते हैं जैसे चींटियों को दाना डालना, सत्संग सुनना और लोगों के रिश्ते कराना, इत्यादि। उन्हें एक चस्का और लग जाता है – किसी बीमारी का विशेषज्ञ बन जाना। राजनेता, व्यापारी, मल्टीनेशनल में काम करने वाले ब्लड-प्रेशर व हृदय रोग विशेषज्ञ, मधुशाला के प्रेमी लिवर-विशेषज्ञ और मीठे के चींटे डायबिटीज़ के विशेषज्ञ, इत्यादि। यह विशेषज्ञता उन पर ज़िंदगी ने थोपी होती है। एक दो स्ट्डस क्या लग गए, हृदय-रोग के बारे में ऐसे बतियाने लगते हैं कि जैसे वे किसी फ़ेमस ब्रांड के विशेषज्ञ हों।

ऐसे विशेषज्ञों का लोगों में बड़ा आदर है पर इसमें जोखिम बहुत है। इन बीमारियों का फ़र्स्ट-हैंड अनुभव कई बार बहुत भारी पड़ जाता है। इसलिए अतुल ने सोचा क्यों न वह दांतों की बीमारी का विशेषज्ञ बन जाए। लिवर एक और फेफड़े दो होते हैं किंतु दांत तो पूरे बतीस होते हैं।

अतुल जिस निम्न मध्यमवर्गीय परिवेश में बड़ा हुआ था, वहाँ घर में टूथब्रश और पेस्ट नहीं होते थे। दातुन होती थी या नमक-तेल। दांत खुरचते रहो, आसपास थूकते रहो। सड़क पर थूकते चलना जैसे दांत साफ़ करने का अनिवार्य हिस्सा था। तब स्वच्छता जैसे लफ़ड़े नहीं होते थे, अपराध-बोध भी नहीं होता था। आप एक बार थूकते तो सामने वाला दो-तीन बार थूकता। दातुन करने वालों से लोग पांच-दस फुट दूर ही रहते थे। उन्हें विश्वास था कि उनके दांतों को कभी कुछ नहीं हो सकता, सुबह शाम ब्रश करने की उन्हें कोई ज़रूरत नहीं थी।

जवानी में जब लोगों के दिल में दर्द रहता है तब अतुल को पहली बार दांत का दर्द हुआ, जो दिल के दर्द का बाप होता है। आधी रात को जब आप अपना गाल थामे आई-आई कर रहे होते हैं तो सारे दर्द फीके लगने लगते हैं। उसने अपने सूजे हुए मुँह और दर्द में डूबे चेहरे के साथ कई रातें मुकेश के गाने सुनते हुए बितायीं। उसकी जेब में प्रेमिका की तस्वीर के बजाए लौंग रहने लगी। दिल के दर्द के साथ दांत के दर्द की ऐसी जुगलबंदी हुई कि वह अपने मुहल्ले का ट्रैजडी-किंग हो गया। अब वह दांतों का अनुभवी, योग्य और सस्ता डॉक्टर ढूँढ़ने लगा। आज़ाद मार्केट, पुरानी दिल्ली के पास लाइन से दांतों के डाक्टर की दुकान थी किंतु वहाँ या तो दांत बनाए जाते थे, मतलब पूरा सेट, या दांत उखाड़े जाते थे। छोटे-मोटे मामले, जैसे रूट-कैनाल, फिलिंग जैसी चीज़ों का वहाँ कोई अस्तित्व नहीं था। भरी जवानी में यह संभव नहीं था कि वह दो-चार दांत उखड़वा लेता।

इसी बीच किसी ने उसे कनॉट प्लेस में दांतों के एक डाक्टर चड्ढा साहब का पता बताया। उन्होंने दवाई वगैरह लगाई पर बात नहीं बनी। जब वह आँखों में आँसू लिए हुए क्लिनिक में बैठा था तो उनसे अतुल का दर्द देखा नहीं गया। उन्होंने पंजाबी में कहा 'कड दां' मतलब निकाल दूँ। उसे कुछ देर उनकी भाषा समझने में लगी। उन्होंने अतुल के असमंजस को हाँ समझ एक बड़े लोहे के औज़ार से दांत पर ग्रिप बनाई। दांत जन्म से अतुल का साथी था; उसे ऐसे कैसे छोड़ देता। चड्ढा साहब शायद अपने बुढ़ापे की ताकत चेक कर

रहे थे। वह आह-आह कर चीख रहा था; दांत और डाक्टर की गुत्थम-गुत्था के बीच उसकी कौन सुनता! थोड़ी देर में कड़क आवाज़ हुई। चड्ढा साहब का चेहरा मुरझा गया। बोले बेटा दांत आधे में टूट गया है अब ज़्यादा दर्द होगा। अतुल उससे से भी अधिक दर्द की कल्पना से सिहर उठा पर आधा टूटा दांत लेकर कहाँ जाता, क्या खाता! लंबी चौड़ी जद्दोजहद के बाद उन्होंने दाढ़ निकाल दी और बाकी जख्म समय के साथ भरने के लिए छोड़ दिए।

कुछ साल बाद अतुल को ब्रिटेन में नौकरी मिली। वहाँ किसी ने उसे पड़ोस की एक पाकिस्तानी महिला डॉक्टर के बारे में बताया। वह उसकी क्लिनिक में झट पहुँच गया। उसे देखते ही उसके मन में भारत और पाकिस्तान के क़रीब आ जाने, और तो और, उनके एक हो जाने के स्वप्न जन्म लेने लगे। उसे अखंड भारत की बातें कुछ-कुछ समझ में आयीं। उसने अपने स्तर पर भारत और पाकिस्तान में ट्रैक-2 डिप्लोमेसी भी शुरू की। वह सुंदर, हृष्ट-पुष्ट और मृदुभाषी थी; इतने गुण होने के बाद डाक्टरीय योग्यता मूर्ख ही देखते हैं। वह 'मि. अ..तुल' ऐसे प्यार से बोलती थी कि वह शर्मा जाता। वह कुर्सी पर बिठाकर अपना मुँह उसके इतना नज़दीक ले आती थी, इतना ... नज़दीक ले आती थी कि आज तक पत्नी के अलावा किसी का मुँह उसके इतना नज़दीक नहीं आया था। अगर किसी मरीज़ और डाक्टर में इश्क होने

की संभावना है तो वह संभवतः सबसे ज़्यादा दांतों के डाक्टर से हैं। जिनकी बात कहीं ना बन रही हो या अपनी प्रेमकथा पर औपचारिक मुलम्मा चढ़ाना चाहते हों वे दांतों के डाक्टर के क्लिनिक में ट्राइ कर सकते हैं। कई बार उसे शर्म भी आती पर वह सोचता यह नहीं शर्माती तो मैं क्यों शर्माऊं। एक ओर जहाँ अतुल भारत और पाकिस्तान के एक हो जाने के बारे में सोचता, दूसरी ओर उसे ऐसा लगता कि वह उसे लूटकर पाकिस्तानियों की तरफ़ से बदला ले रही थी। वैसे भी वहाँ चक्कर लगाना उसकी पत्नी को पसंद नहीं था। एक बार उस डाक्टर ने उसे चार्ट दिखाया जिसमें 32 दांतों के चित्र थे। फिर एक-एक कर बताया कि अतुल के कितने दांतों में इंफ़ेक्शन है। अतुल को समझ में आया कि वह जिस दांत के दर्द की वजह से यहां आया था, उसके अतिरिक्त वह उसके सभी दांतों का ठेका भी लेना चाहती थी। उधर रोज़ खाली होती जेब को देख उसकी पत्नी गुस्से में थी। अफ़सोस व्यक्तिगत स्तर पर भारी प्रयासों के बाद भी भारत और पाकिस्तान के संबंध ना सुधर सके यद्यपि बावजूद जेब कटने की कड़वाहट के कई मीठी यादें शेष रहीं।

जब वह भारत लौटा तो उम्र की वजह से पुराने इंफेक्शन उभर आने लगे। सी.जी.एच.एस (सरकारी) डिस्पेंसरी की बात कुछ खास है, वह कुछ साल पहले तक तो दांतों की परेशानी को परेशानी ही नहीं मानती थी और उसे व्यक्तिगत स्तर पर लौंग खाकर, कुल्ले-गरारे कर हल करने का सुझाव देती थी। ऐसा लगता थी कि वे नैचरोपेथी को बढ़ावा देना चाहती हो। अब उन्होंने यह कार्य ठेके पर निजी डाक्टरों के हवाले कर दिया है। डॉक्टर्स जानते हैं कि कर्मचारी को किस-किस चीज़ का पैसा सरकार द्वारा स्वीकृत है। उसे चाहे-अनचाहे सब कुछ करा लेने के लिए फुसलाते हैं। दुनिया भर घूमा पर चूना लगाने की कला में भारतीयों जैसा दक्ष कोई नहीं; कत्थे के बिना चूना लगा देते हैं। जहां सरकार जैसा दैत्याकार व्यक्तित्व हो तो वहां चूना लगाना तो बनता ही है। इनकी बला से दाएं से चौथे के बजाए पांचवा दांत निकल जाए पर पैसा और रिकार्ड बरोबर रहना चाहिए।

इधर एक परिचित को मुंह का कैंसर हो गया। उसके बाद तो उसे बुरे-बुरे सपने आने लगे। जिन डाक्टरों के पास एक-आध बार दिखाकर छोड़ आया था और दांतों को भगवान भरोसे छोड़ दिया था वे सपने में आकर कहने लगे, 'हम कहते थे न तुम्हें मुंह का कैंसर होगा।' डाक्टरों से चारों और घिरा वह आपरेशन-थिएटर में खुद को देखता, जहाँ लेटा वह अगले जन्म में बचपन से ही दांतों का ध्यान रखने का संकल्प ले रहा होता; उसकी नींद खुल जाती तो रात को तीसरी बार ब्रश करने लग जाता।

अब डॉक्टर उसके दांत देखते हैं तो मुस्करा देते हैं। कोई दांत कुंवारा नहीं बचा। उसे अच्छा लगता है दांतों के डाक्टर के पास पूरी तैयारी से बैठना। बुखार वगैरह बीमारी में डाक्टर आपका चेहरा देख या थर्मामीटर लगाने की औपचारिकता पूरी करते हैं पर दांतों का डॉक्टर आपको खास कुर्सी पर बिठाता है, लिटाता है। उसका सहायक पानी रखता है। उसे एक-एक औज़ार दिए जाते हैं। सामने चेहरे पर लाइट पड़ती है, जैसे अभी फोटो खिंचने वाली हो या शूटिंग होने वाली हो। पैसे तो लगते हैं पर दांतों का डाक्टर आपको वी.आई.पी. बना देता है। इंजेक्शन लगने के बाद दांतों में घुसने वाली पिन भी मज़ा देती है। बल्कि अतुल जैसे नियमित लोगों को तो पिन की कमी खलती है।

अब तो दांतों के डाक्टर के पास जाना उसकी हॉबी बन गई है। डॉक्टर की दुकान मार्केट में है। वह और भी दो-चार काम कर लेता है, जैसे सब्ज़ी खरीदना, बाल कटवाना आदि। पर मुख्य रूप से लोग यही मानते हैं कि वह डाक्टर साहब के पास आया है। पत्नी भी गाहे-बगाहे पूछ लेती है, कई दिन हो गए दांतों के डाक्टर के पास नहीं गए। अंधा क्या चाहे दो आंखें, जब चलने लगता है तो वह चुपचाप सब्ज़ी का थैला पकड़ा देती है।

साथी उसे दांतों का विशेषज्ञ समझते हैं, वह उन्हें अपने डाक्टर का पता ही नहीं देता अपितु क्लिनिक तक छोड़ भी आता है। कुछ दोस्तों ने हवा उड़ा दी है कि इसे कमीशन मिलता है; वे अतुल की दांतों से अमर प्रेम-कथा के बारे में कुछ नहीं जानते।

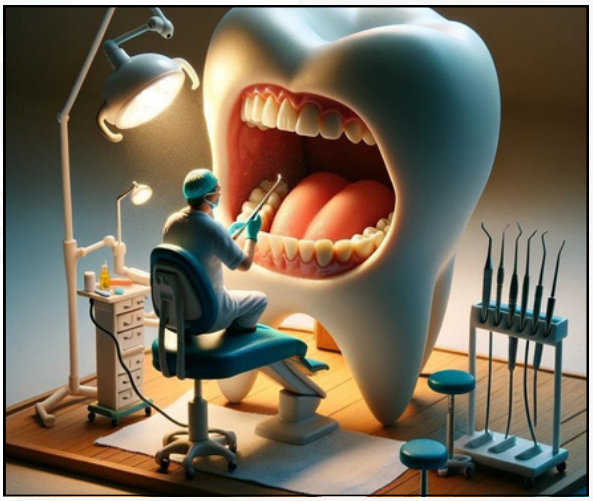

माफ़ी माँगने के बावजूद

डॉ. बलराम अग्रवाल
लेखक, आलोचक,
अनुवादक और संपादक

प्रेम का सूत्रपात जिन दिनों हुआ, कृतिका मेडिकल की पढ़ाई कर रही थी और मैं अपनी पीएच.डी. के शोधपत्र को अंतिम रूप दे रहा था। शहर एक था; लेकिन कॉलेज अलग-अलग। मेडिकल लाइन की होने पर भी हिन्दी साहित्य में उसकी रुचि थी। उसी के चलते, साहित्यिक संगोष्ठियों में वह मिलती रही। उन गोष्ठियों ने हमारी आत्माओं को एक-दूसरे से जोड़ दिया। फिर, गोष्ठियों के अलावा भी हम मिलने लगे। मैं उसे तुलसी, मीरा, महादेवी और मुक्तिबोध के पद और कविताएँ, दुष्यंत की गजलें सुनाता। सुनते-सुनते वह मेरे कंधे पर सिर रखकर पढ़ाई के तनाव भूल जाया करती। उस समय वह सिर्फ एक लड़की होती थी, जो थककर मेरे शब्दों में पनाह लेती थी।

लेकिन अब वह डाक्टर थी। देश की एक बहुत-बड़ी हॉस्पिटल चेन में सीनियर सर्जन। था तो मैं भी डॉक्टर ही; लेकिन मेरे गले में स्टेथोस्कोप नहीं, शब्दों की गुनगुनाहट होती थी। कभी कोमल, कभी धारदार; और कभी दोनों एक-साथ। मैं शब्दों की दुनिया में खुद को तलाशता। वह धड़कनों की दुनिया को सँभालती। मैं जिंदगी के अर्थ तलाशता, वह, जिंदगियाँ बचाती। जब वह कहती, “आज एक फूल-सी बच्ची के जीवन को बचाया!” तो मैं उस पर कविता लिखने की कोशिश करता। जब मैं कहता, “मैंने प्रेम पर एक ललित निबंध पूरा किया!” तो वह मुस्करा भर देती, जैसे कहती हो - मेरी समझ में सिर्फ प्रेम आता है सुधीश, निबंध नहीं।

हमारी मुलाकातें अब तयशुदा समय और जगहों पर होने लगी थीं। एक शाम, जब हमारा मिलना पहले से तय था, वह नहीं आयी। कैफ़े के बंद होने तक मैं वहाँ बैठा रहा। मालिक या मैनेजर को अन्यथा न लगे, इसलिए कॉफ़ी पर कॉफ़ी मँगाता और बिना पिये ही वापस भेजता रहा।

कृतिका अगली सुबह मेरे कमरे पर आयी। बेहद थकी-सी। आते ही बेड पर पसर गयी। आँखें बंद। “सॉरी सुधीश!” पसरे-पसरे ही उसने कहा, “कल शाम एक सीरियस केस आ गया था। तुरन्त ऑपरेशन के लिए ले जाने का निर्णय लेना पड़ा।”
“तो?” मैंने कड़वाहट के साथ पूछा।

“तुम्हें फ़ोन करने का ख्याल तक नहीं आया। रात भर चला ऑपरेशन,” मेरी कड़वाहट पर ध्यान न देकर वह बोली, “थैंक गॉड, सफल रहा। एक और फूल मुरझाने से बच गया।” उसके किसी भी शब्द में कल शाम के खराब हो जाने का दुख या चिन्ता नहीं थी।

“सोया तो रात भर मैं भी नहीं कृतिका!” कल शाम के ही तनाव से चालित भीतर के पुरुष ने कहा, “तुम प्लीज, अपनी प्राथमिकता मुझे बताओ - मैं या मरीज़!”
मेरे सवाल पर उसने एक झटके में आँखें खोल लीं। नींद से बोझिल, सूजी-सूजी सी पलकें। मैंने उन्हें देखा तो अपने सवाल की क्रूरता का आभास हुआ।

“मैंने सोचा था, मुझ थकी-हारी को यहाँ कुछ तसल्ली मिलेगी इसीलिए ओ.टी. से सीधे चली आई। लेकिन अब... मेरा निर्णय मुझे गलत लग रहा है।”
उसके आक्रामक तेवर ने मेरे गले को खुश्क कर दिया था।

◇.....◇

कॉफ़ी कैफ़े

नीलमणि

लगभग बीस साल बाद तीन पुरानी सहेलियाँ— नीलू, रेखा और कविता कॉफ़ी कैफ़े में मिलीं। कॉलेज के दिनों की मस्ती याद करते-करते बात अचानक पतियों पर आ गई।

नीलू हँसते हुए बोली, “मैंने अपने पति को शादी से पहले आठ साल तक जाना, सोचा अब सब समझ लिया। लेकिन शादी के बाद पता चला कि मैं तो इनको दाल में नमक जितना ही जानती थी।”

रेखा ने भी ठंडी साँस भरते हुए कहा, “अरे! मेरी तो सिर्फ़ दो साल की जान-पहचान थी। तब लगा बहुत कुछ जान लिया है, लेकिन शादी के बाद समझ आया, असल में, मैं उन्हें चाय में शक्कर जितना ही समझ पाई थी।”

दोनों हँसते-हँसते कविता की ओर देखने लगीं। कविता शांति से कॉफ़ी का घूँट भरते हुए बोली, “तुम दोनों भाग्यशाली हो, कम-से-कम प्रेम का स्वाद तो चखा। मैंने तो अब तक वो स्वाद भी नहीं चखा। हाँ, पति की रोज़-रोज़ एक जैसी आदतों का ‘धैर्य-रस’ ज़रूर पी रही हूँ। सालों से एक ही स्वाद— बिना शक्कर की कॉफ़ी जैसा।”

नीलू ने कहा, “हाँ कविता, जिंदगी का स्वाद बिल्कुल कॉफ़ी जैसा सतरंगी ही है— किसी को यह कड़वी ब्लैक कॉफ़ी की तरह मिलता है, किसी को इसमें दूध और चीनी घुली नसीब होती है, तो किसी की प्याली में क्रीम, केक और बिस्किट भी साथ चले आते हैं।”
तीनों ज़ोर से हँस पड़ीं।

◇.....◇

एशिया महाद्वीप में क़िस्सागोई की दास्तानगोई

कुछ यादें... कुछ हकीकतें (भाग-3)

नासिरा शर्मा
साहित्य अकादमी और व्यास सम्मान से पुरस्कृत लेखिका

अरब लेखक ही नहीं एशिया के लेखक अपने पुरखों के बयान-क़िस्सों से आज भी प्रेरणा लेते हैं। भले ही उसमें जादू हो, अय्यारी हो, किसी को पाने की जुस्तुजू हो, मगर अलग तरह से। फ़ारसी शब्द दास्ताँ हैं, और दास्तानगोई का अपना रंग फ़ारस की ज़मीन पर भी खूब फैला-फूला है। कवि निज़ामी गंजवी की 'हफ्त पैकर' और 'शीरिन व खुसरू' मसनवी, जिसमें सब कुछ नज़्म की शैली में कही गई कहानियां हैं, जिसमें इश्क़ है और परियों पर इंसानों से मोहब्बत का जिक्र है। शहनामा फिरदौसी कहने को ईरान की तारीख है परन्तु वह एक बड़ी दास्तान है जो 60,000 शेरों में कही गई है। मैने पहली बार शाहनामा को ईरान में सुना था जिसके टुकड़े स्थान व माहौल के मुताबिक पढ़े जाते हैं, जैसे नक्क़ाली, ज़ूरखाने (जो पहलवानों की कसरत के समय गाई जाती है) जिसमें रुस्तम की बहादुरी व जंग का किस्सा होता है। दास्तानों के प्यार भरे किस्से चायख़ाने में गए जाते हैं। दूसरी-तीसरी बार दिल्ली में फ़िरदौसी के जन्मदिन पर ईरान से आए दास्तानगोह से सुना था। यहां पर एक नमूना मैं शाहनामा की उस दास्तान का दूंगी जो हिन्दुस्तानी कहानी 'शतरंज की पैदाइश' के नाम से है।

हुमान बादशाह बूद, बर हिन्दुआन-ख़िरदमंद व बीना व रोशन रवान
(हिंदुस्तान में एक बादशाह था जो बहुत समझदार था)।

फिरदौसी सन्दल नाम के उस रियासत का ज़िक्र करते हैं जो भारत में तथा जिसका साम्राज्य चीन से कश्मीर तक था जिसका नाम जमादूर था। हिन्द के बादशाह के मरने के बाद मलका को मजबूर किया जाता है कि वह अपने देवर से शादी करे। अपने दोनों बेटो के बीच, रानी तख्त व ताज की विरासत किसे दें, क्योंकि दोनों अपने को पिता के मरने के बाद वारिस कहते थे। दोनों में जंग होती है और एक भाई मारा जाता है जिसका ग़म रानी दोनों के लश्करों से अपना दुख कम करती है, कि कैसे किसकी फौज आगे बढ़ी और कैसे बेटा मारा गया।

जब हम दास्तानगोई की बात करते है तो उसमें मैं बेबिलौन की देवमाला को भी शामिल करना चाहूंगी जो प्राकृतिक देवता थे। वनस्पति विज्ञान तो पूरा एक विषय है मगर जिस तरह ये दास्तानगोई उसमें इराक़ का अर्ध इतिहास व अर्ध-दंतकथाओं का दौर तीन हज़ार वर्ष ई. पूर्व से आरम्भ होता है। उस समय तीन वीर नायक इराक के प्रांत सुमेर से ताल्लुक रखते हैं, जिनके नाम इनमेंगर, लोगुलबादार और गिलगामिश है। गिलगामिश की पूरी दास्तान की पांडुलिपि सातवीं सदी ई. पूर्व में शहंशाह आशूर बनिपाल की आज्ञा से नेनवा के शाही पुस्तकालय के लिए तैयार कराई गई थी। यह नुस्खा कच्ची मिट्टियों की बारह तख्तियों पर पीकानी लिपि में अक्कादी में मौजूद है। इस पर लेखक का नाम दर्ज नहीं है। यह कहानी देवमाला में गिलमिश अय्याश ज़ालिम बादशाह है जो जीवन-वृक्ष की तलाश में है। उस वृक्ष को साँप चुरा लेता है। उसमें सैलाब का ज़िक्र है जिसमें कश्ती डूब जाती है। यहाँ पर जीवन-वृक्ष की तलाश, जीवन की चाह से जुड़ जाती है, जैसे गिलगामिश का दोस्ता कहता है:

यह मैं अपना खुद का भेद बताता हूँ
पानी में गुलाब की तरह काँटेदार पौधा होगा
तेरी उंगलियों को घायल कर देगा
यदि तूने उसे हासिल कर लिया तो
तेरे पास वह चीज़ होगी
जिससे इंसान की जवानी लौट आती है।

एशिया में क़िस्सागोई की दास्तानगोई, बहुत बड़ा सिलसिला है, यहाँ बस इतना ही। लेकिन समय का सच यह है कि आज के परिदृश्य में क़िस्सागोई का चलन बढ़ गया, और कहने वाले तो आज की कहानियों में किस्सागोई को ढूंढ़ते हैं। वर्तमान समय में मंच पर होती, पहली किस्सागोई कर्बला पर मैंने फौजिया की सुनी, बाद में उन्हीं के द्वारा महाभारत पर। क़िस्सागोई के नाम पर क़िस्सा-बयानी कई जगहों पर हो रही है, और पंचतंत्र का जादू धीमा पड़ने के बाद आज फिर बढ़ रहा है।

आदि महाकवि वाल्मीकि के 10 अप्रतिम साहित्यिक अवदान

विजय नगरकर
अनुवादक, लेखक,
ब्लॉगर

रामायण के आदि-कवि महर्षि वाल्मीकि भारतीय साहित्य की उस जीवंत ज्योति की तरह हैं, जिसकी आलोकरेखा सदियों से हम सबकी सांस्कृतिक चेतना को आलोकित करती रही है। किंतु यदि आप सोचते हैं कि वाल्मीकि सिर्फ धार्मिक आख्यानों के रचनाकार हैं, तो विजय रंजन द्वारा रचित यह विलक्षण ग्रंथ आपके बोध को एक नई दिशा देने वाला है।

'आदि-महाकवि वाल्मीकि के 10 अप्रतिम साहित्यिक अवदान' एक ऐसा विषय है जो अब तक अकादमिक और साहित्यिक जगत में विस्मृत या उपेक्षित रहा है। विजय रंजन, एक विधिवेत्ता होने के बावजूद, भाषा, साहित्य और संस्कृति की साधना में इतने रमे हैं कि उनकी लेखनी विधि की धार से ज्यादा साहित्य की ध्वनि बन गई है। उन्होंने वाल्मीकि की रामायणम् को दस प्रमुख आधुनिक साहित्यिक वादों की कसौटी पर कसकर यह सिद्ध किया है कि इन सभी के वास्तविक बीजप्रयोक्ता स्वयं महर्षि वाल्मीकि हैं। इस ग्रंथ का सबसे आकर्षक पक्ष वह मौलिक विमर्श है जिसमें रामायणम् को प्रथम मानववादी, नारीवादी, लोकवादी, प्रकृतिवादी, बिम्बवादी, राष्ट्रवादी, नयवादी, नयरसवादी, मनोवैज्ञानिक महाकाव्य तथा महत् तत्वों वाला महाकाव्य सिद्ध किया गया है। लेखक बताते हैं कि रामायण सिर्फ भारत की सांस्कृतिक धारा नहीं रही, बल्कि यह बाली, जावा, स्याम, चीन जैसे देशों तक पहुँची। यह भारत की प्राचीन भाषाओं - पाली, प्राकृत, अपभ्रंश - के माध्यम से अभिव्यक्त होती रही और रामकथा अब वहाँ की लोक-संस्कृति का हिस्सा बन चुकी है।

आज के परिप्रेक्ष्य में जब साहित्य विमर्शों का दौर है, यह ग्रंथ वादों की मौलिकता को भारत के मूल संस्कारों में देखता है। वाल्मीकि की काव्य-दृष्टि को पाश्चात्य रंगों में ढालने के बजाय उसे उस रंग में लौटा देता है जो ऋषि की लेखनी ने हज़ारों वर्ष पूर्व रचा था। यह ग्रंथ न केवल एक विचारोत्तेजक दस्तावेज है, बल्कि एक साहित्यिक पुनर्जागरण का घोष भी है। वाल्मीकि को आदि कवि कहे जाने के पीछे केवल उनकी प्राचीनता नहीं, बल्कि उनकी रचनात्मक विलक्षणता है। तुलसीदास ने उन्हें ब्रह्मा के समकक्ष माना और रामायण को साहित्यिक संरचना की शिल्पशाला कहा। इस काव्य में वैदिक मंत्रों की जटिलता से आगे जाकर वह भाव है, जो हर युग, हर समाज और हर व्यक्ति को छू सके – यही उसे 'आदि काव्य' बनाता है। वाल्मीकि ने अपने शोक को श्लोक में ढालते हुए एक नई साहित्यिक परंपरा की नींव रखी। क्रौंच पक्षी के वध पर निकली उनकी करुण पुकार केवल करुणा नहीं, न्याय की पहली हुंकार थी।

पुस्तक के अनुसार, रामायण का मूल उद्देश्य समाज में 'अन्याय का निरोधन' और 'न्याय की स्थापना' है। राम के निर्णय – चाहे वह रावण जैसे अत्याचारी का संहार हो, कैकेयी के अन्यायपूर्ण वरदान को स्वीकारना हो या सीता का परित्याग – सभी में सार्वजनिक न्याय की झलक है। यहाँ न्याय केवल दंड का साधन नहीं, बल्कि करुणा और कर्तव्य से जुड़ी एक उच्च भावना है – यही कारण है कि पुस्तक 'न्याय रस' का प्रस्ताव करती है – एक ऐसा रस जो रामायण के भीतर की आंतरिक चेतना को परिभाषित करता है।

वाल्मीकि का राम मर्यादापुरुषोत्तम है, जो भावनाओं में बहता है, रोता है, मूर्छित होता है, किन्तु फिर भी धर्म का पथ नहीं छोड़ता। "मनुष्योऽहम्" – राम का यह उद्घोष उन्हें दिव्यता से उतार कर जनसामान्य के बीच लाता है, जिससे पाठक उनके संघर्षों में स्वयं को देख सके। राम का चरित्र मानव की श्रेष्ठता का आदर्श है, दिव्यता की दूरी का नहीं। रामायण, एक लोक-केन्द्रित महाकाव्य है, जहाँ नायक की हर क्रिया जन-सुविधा और लोकमत के अनुरूप होती है। राम का वनवास, सीता का परित्याग, यहाँ तक कि अयोध्या लौटने के बाद राज्य का विभाजन – सभी निर्णय इस बात का प्रमाण हैं कि लोकहित ही राम की नीति है।

जहाँ अनेक प्राचीन ग्रंथों में स्त्रियाँ केवल सहायक पात्र बनती हैं, वहीं वाल्मीकि की रामायण में सीता एक स्वाभिमानी, संवादशील और निर्णय लेने वाली नायिका हैं। सीता रावण के समक्ष निर्भीक हैं, राम से असहमति जताने में संकोच नहीं करतीं, और वन में चलने का निर्णय स्वयं लेती हैं। मंदोदरी, तारा जैसी स्त्रियाँ भी सामाजिक विमर्श में सक्रिय हैं। शूर्पणखा का चरित्र – आलोचना का विषय नहीं, बल्कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था की सीमाओं की ओर इशारा है। वाल्मीकि पर्दा, सती, बाल विवाह जैसे किसी भी स्त्री-विरोधी सामाजिक संरचना का समर्थन नहीं करते – यह रामायण को "विश्व की पहला नारीवादी महाकाव्य" का स्वरूप प्रदान करता है।

रामायण केवल मानव जीवन का चित्र नहीं, प्रकृति के साथ उसकी अंतःक्रिया का काव्यात्मक संकलन भी है। सरयू और गंगा का संगम, अरण्य के विविध वृक्ष, पशु-पक्षी, ऋतुओं की छवियाँ, सब मिलकर एक ऐसा संसार रचते हैं, जिसमें प्रकृति भी एक जीवंत पात्र है। सीता के अपहरण पर सूर्य का पीला पड़ जाना या अशोक वृक्ष की छाया में उनका बैठना – प्रकृति की मनुष्यता की ओर संकेत करते हैं। रामायण इस दृष्टि से "प्रकृतिवादी महाकाव्य" है।

रामायण में राम का राष्ट्र प्रेम एक शांत, परंतु दृढ़ राष्ट्रवाद का प्रतीक है – जो उग्र नहीं, बल्कि आत्म-त्याग से युक्त है। "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" – यह पंक्ति मातृभूमि के प्रति भक्ति को सर्वोपरि रखती है। राम लंका जैसे स्वर्णराज्य को त्यागकर अयोध्या लौटते हैं – यह निर्णय केवल प्रेम नहीं, एक राष्ट्रधर्मी उत्तरदायित्व का परिचायक है।

कैकेयी का द्वंद्व, दशरथ का अपराध-बोध, राम का संयम, मंथरा की मानसिक जटिलता – सभी पात्र एक मनोवैज्ञानिक खाका रचते हैं। हनुमान के साहस और धैर्य की अभिव्यक्ति उन्हें केवल शक्ति का नहीं, बल्कि मानसिक सामर्थ्य का प्रतीक बनाती है। यह ग्रंथ मानव मन की जटिलताओं का ऐसा विश्लेषण करता है, जिसे आधुनिक मनोविज्ञान भी सहर्ष स्वीकार कर सकता है।

वाल्मीकि की भाषा, छंद, और प्रतीकात्मकता अद्भुत है। उनके द्वारा प्रस्तुत 'रामायण' केवल एक कथा नहीं, बल्कि एक गूढ़ प्रतीक है। रामायण केवल प्राचीन कथा नहीं, आधुनिक सामाजिक, शैक्षिक और प्रशासनिक नीतियों का पथप्रदर्शक बन चुका है। रामायण का प्रभाव कालिदास, तुलसीदास, भवभूति से लेकर रामानंद सागर तक फैला है।

यह पुस्तक विजय रंजन जी के गहन परिश्रम और चिंतन की फलनिष्पत्ति है, जो वाल्मीकि के महाकाव्य के दार्शनिक, सामाजिक और सांस्कृतिक निहितार्थों में न केवल गहराई से उतरता है, इसके स्थायी प्रभाव के लिए सार्वकालिक स्वीकार्य तर्क भी देता है।

◇.....◇

टू बी ओर नॉट टू बी

मनीषा कुलश्रेष्ठ
पुरस्कृत साहित्यकार, 'हिन्दीनेस्ट' की प्रथम संपादक

उस दिन सुबह साढ़े आठ बजे चाय के साथ एक सैंडविच खाकर मैरी नैली मुझे नॉटन से स्ट्रैटफ़ोर्ड खुद छोड़ने आई। नैली बहुत सधाव से गाड़ी चलाती है। मैंने गौर किया कि इंग्लैंड में ज्यादातर सिंगल-रोड्स हैं लेकिन मजाल है कि ट्रैफिक-व्यवस्था खराब हो जाए। हमें स्ट्रैटफ़ोर्ड-अपोन-एवॉन पहुँचने में पैंतीस मिनट लगे होंगे। रास्ते में शॉटरी में नैली ने शेक्सपीयर की पत्नी एन हैथवे का पैतृक घर दिखाया - बगीचों से सजा एक सुंदर पुराना कॉटेज। जब शेक्सपीयर बड़े नाटककार बन गए तो उन्होंने शेष जीवन बाल-बच्चों सहित यहीं बिताया।

गंतव्य पर पहुँचकर गाड़ी मुख्य सड़क के पार्किंग के हिस्से में खड़ी करके नैली मुझे स्ट्रैटफ़ोर्ड शहर में बहती एवॉन नदी के किनारे के मोहक बगीचों में ले आई जहाँ शेक्सपीयर की बड़ी सी मूर्ति लगी थी, जिसके चारों ओर सड़कों का गुँजल था। बागों में डेफोडिल्स और ट्यूलिप्स की बहार थी; पेड़ों पर गुलाबी मैग्नोलिया झूम रहे थे। नैली ने मुझसे शेक्सपीयर की स्मृति में बने रॉयल थियेटर के अहाते में गले लगकर विदा ली। सामने ही एक बोर्ड पर इसका इतिहास लिखा था, जो शेक्सपीयर के नाटकों से कम दिलचस्प नहीं था:"स्ट्रैटफ़ोर्ड का पहला वास्तविक थिएटर 1769 में अभिनेता डेविड गैरिक द्वारा विलियम शेक्सपीयर के जयंती समारोह के लिए बनाया गया था जो महज एक अस्थायी लकड़ी की बनी इमारत थी, जो दो दिनों की मूसलाधार बारिश में लगभग बह गयी। 1864 में शेक्सपीयर के जन्म की 300वीं वर्षगांठ मनाने के लिए,शराब बनाने वाले चार्ल्स एडवर्ड

फ्लावर ने फिर से लोगों को एक अस्थायी लकड़ी के थिएटर के निर्माण के लिए उकसाया, जिसे टेरसेंटेनरी थिएटर के रूप में जाना जाता है, जो कि शराब बनाने वाले के बड़े बगीचों के एक हिस्से में बनाया गया था, तीन महीने के बाद टेरसेंटेनरी थिएटर को ध्वस्त कर दिया गया। 1870 के दशक की शुरुआत में, फ्लावर ने स्थानीय परिषद को नदी के किनारे की कई एकड़ ज़मीन शेक्सपीयर की याद में एक स्थायी थिएटर बनाने के लिए दी, जो 1879 में बनकर तैयार हुआ। 20वीं सदी की शुरुआत तक इसे अभिनेता/प्रबंधक फ्रैंक बेन्सन द्वारा प्रभावी रूप से चलाया गया। दुर्भाग्यवश 1926 में यह थियेटर जलकर खाक हो गया। एक नए थिएटर के लिए डिज़ाइन हासिल करने के लिए वास्तुशिल्प प्रतियोगिता आयोजित की गई थी, जिसकी विजेता, अंग्रेज़ वास्तुकार एलिजाबेथ स्कॉट ने रॉयल शेक्सपीयर थिएटर बनाया। तत्कालीन प्रिंस ऑफ़ वेल्स, बाद में एडवर्ड VIII द्वारा 1932 में खोला गया था। नए थिएटर में कई शानदार शेक्सपीयर नाटक हुए, जिनमें अभिनेता एंथनी क्वेले भी शामिल थे। सर पीटर हॉल को 1959 में यहाँ का कला निर्देशक नियुक्त किया गया, जिन्होंने 1961 में रॉयल शेक्सपीयर कंपनी का गठन किया।"

अभी यह बंद था, मगर मुझ जैसे कई उत्सुक पर्यटक बाहर खड़े थे। मैंने तय किया कि अगर यहां कोई शो हो रहा होगा शेक्सपीयर के किसी नाटक का तो जरूर मैं यहाँ एक रात रुक जाऊँगी, फिर अगली सुबह यहां से बर्मिंघम होकर मैनचेस्टर चली जाऊँगी। मैं सूटकेस लिए-लिए एवॉन नदी के किनारे बैनक्रॉफ्ट-गार्डन में घूम रही थी; कमाल का बगीचा था यह, इस कला में अंग्रेजों से माहिर कोई नहीं, एक मानव सूर्यघड़ी भी

थी, नहर के मुहाने पर दो सुंदर पुल थे। एक तैरते हंसों वाला फव्वारा और आगे गॉवर स्मारक, जहाँ शेक्सपीयर की मूर्ति अपने वैभव के साथ खड़ी थी।आसपास शेक्सपीयर और उनके नाटकों के चार पात्रों की मोहक मूर्तियाँ थीं जो फ़िलॉसफ़ी,ट्रेजेडी, कॉमेडी के इतिहास का प्रतीक हैं। मैंने पास जाकर देखा वे हैमलेट, लेडी मैकबेथ, फाल्स्टाफ और प्रिंस हैल की थीं।

दस बजे रॉयल थियेटर खुला तो सबसे पहले मैंने घूमने के लिए टिकट लिया। यह थिएटर वास्तव में काफी भव्य था, जिसमें थ्रस्ट स्टेज के तीन तरफ हजार से अधिक सीटें लगी थीं। यह शेक्सपीयर के नाटकों को अक्सर एलिजाबेथ और जैकोबीन काल में प्रदर्शित करने का तरीका है, जो दर्शकों को एक अंतरंग अनुभव प्रदान करता है। अफसोस! आज यहां कोई शो नहीं था। मैं बाहर आ गई, मुझे वहाँ एक लड़की ने बताया था कि ठीक सड़क के पार स्वान थियेटर खुल गया हो तो वहाँ भी जाएँ। मैं स्वान थियेटर पहुंची, जो एक गोथिक अंदाज की गोल सुंदर इमारत थी। मेरे साथ ही एक बूढ़ा अपनी छड़ी के साथ भीतर घुसा। वह शायद कोई बोर्ड-मेम्बर था इस सोसायटी का। मैं उसके उत्साही कदम देखती रह गई। मैं बूढ़े के पीछे भीतर घुसी, वह किसी गलियारे में अन्तर्धान हो गया था। मैंने रिसेप्शन पर बैठे एक व्यक्ति से मंच देखने की इच्छा जाहिर की। उसने बताया कि मंच केवल शो के समय खुलता है, टूरिस्टों के लिए नहीं। मैंने कैफे में कॉफी पी, तभी बूढ़ा बाहर आया, उसने मुझे लाल सूटकेस के साथ हैरान-परेशान देखा। मैंने उसे अपना परिचय देते हुए कहा, “आए’म मनीषा, एन इंडियन ऑथर। मैं जानती हूँ कि मैं कोई शो तो देख नहीं पाऊँगी मगर मैं थियेटर देखना चाहूँगी।”

उसने हाथ बढ़ाकर कहा, “जैफ़ हैरिस,” और मुझसे इशारे से साथ आने को कहा। एक मुहाने पर ले जाकर उसने बताया कि यह गैलरी वाला ऑडिटोरियम है जिसमें लगभग 450 लोग बैठ सकते हैं। जल्दी ही यहां ‘एज़ यू लाइक इट’ शो होगा। वहाँ कोई शो नहीं था, तो फिर यहां रात को रुकने का कोई अर्थ नहीं था; मुझे बर्मिंघम की रेल-टिकट बुक करवानी होगी और बाकी जगहें देख कर जल्दी स्टेशन जाना होगा। बाहर मुझे वही कर्मचारी मिला जो मुझे भीतर जाने से रोक रहा था, मैंने उससे पूछा यहां कोई लॉकर रूम है? उसने बताया कि बगल वाली सड़क पर सात सौ कदम की दूरी पर एटिक थियेटर है, वहाँ दिन भर सामान रखने के चार पाउंड्स लगते हैं। मैं जल्दी-जल्दी सूटकेस रड़काते हुए एटिक थियेटर पहुंची, वहाँ सफेद एप्रन पहने हुए एक मोटी महिला थी, जो मुझे जेन ऑस्टिन की कहानियों की पात्र जैसी लगी। वह मुझे एक बड़े गोदामनुमा कमरे में ले गई जहाँ तरह-तरह के कॉस्ट्यूम्स के ढेर लगे थे। सीलन की महक भी थी। बड़ा बेतरतीब था वह। वहीं कुछ रैक्स थे, उसने चार पाउंड लेकर मेरी अटैची वहीं रखी दी, बिना किसी पावती के और कहा अभी बारह बजे हैं; शाम छह बजे तक ले लेना।

मुझे भूख लग आई थी; मैंने एक रेस्तरां में बैठकर ठीक से कुछ खाया और हॉट चॉकलेट पी। अब गूगल-वॉक पर हैनले स्ट्रीट पर शेक्सपीयर का घर खोजा जो एटिक थियेटर की समानांतर गली से होकर सात मिनट की दूरी पर था। छोटा-सा गाँव था, जिसमें एक दस्ताने बनाने वाले व्यापारी का बेटा शेक्सपीयर रहता था। उसके इस दर्शन के साथ कि ‘सारी दुनिया एक रंगमंच है। यूं ही तो नहीं उन्हें इंग्लैंड का राष्ट्रीय कवि और "बार्ड ऑफ एवॉन" कहा जाता है।

हैनले-चौक में शेक्सपीयर की मूर्ति लगी थी। पास ही शेक्सपीयर का जन्मस्थान जो था सोलहवीं शताब्दी में बना लकड़ी का एक घर था। 1564 में यहां विलियम शेक्सपीयर का जन्म हुआ और यहीं उन्होंने अपना बचपन और यौवन बिताया। अब यह जनता के लिए खुला एक छोटा संग्रहालय है। मैंने टिकट खरीदा और भीतर पहुंची। यह एक अजीब अनुभूति जगाने वाला संग्रहालय है, जिसमें घुसते ही एक बैठकनुमा कमरा मिलता है जहाँ शेक्सपीयर के पिता जॉन शेक्सपीयर अपना व्यवसाय चलाते थे। अगला कक्ष जन्मस्थान के

कक्ष के रूप में प्रदर्शित था। दो और कमरे जो थे वे बहनों और भाइयों के थे। टूर-गाइड के पास बहुत सी कहानियाँ थीं - कैसे वह इन कमरों में खाता-खेलता और सपने देखता था और यह भी कि तब भी लड़के-लड़कियों में पक्षपात होता था - फायर प्लेस लड़कों के कमरे में था और लड़कियों के कमरे में नहीं। मगर इस संग्रहालय में मुझे शेक्सपीयर की कोई भी पुस्तक या शेक्सपीयर के हाथ से लिखे गए पत्र नहीं मिले, जैसा कि अन्य लेखकों-विद्वानों के घर और संग्रहालयों में मिलते हैं। कांच के एक केस में 1844 से 2000 तक की शेक्सपीयर की आठ प्रतिमाएँ प्रदर्शित की गई थीं। एक अन्य केस में शेक्सपीयर का बीयर मग (1933), शेक्सपीयर के ताश के पत्ते (1974) और चीन में बनी शेक्सपीयर की एक्शन फिगर (2003) जरूर थी। कहते हैं यह घर पहले बहुत जीर्ण-शीर्ण था। इसके पूर्व गौरव को बहाल करने और इसकी सज्जा पूर्ववत करने में उल्लेखनीय प्रयास किया गया था। एक समय में बहुत अफवाहें उड़ीं कि शेक्सपीयर नाम कोई शख्स है ही नहीं। मगर तब दस्तावेजों ने साथ दिया। बिलाशक यह शहर 'स्ट्रेटफॉर्ड अपोन एवॉन' विलियम शेक्सपीयर नाम के एक चपल कवि और नाटककार के यहां जन्म लेने का और मरने का दावेदार था। मैं एक घंटे में बाहर बगीचे में आ गई, जिसे शेक्सपीयर के समय का स्पर्श देने के लिए उसी अवधारणा पर बना गया था। शेक्सपीयर से संबंधित एक ओर प्रॉपर्टी थी मगर वहाँ जाने का मेरा मन नहीं किया। मुझे शेक्सपीयर का जीवंत नाटक तो देखने को नहीं मिला तो मैंने तय किया कि अब मैं शहर में बेमकसद भटककर शेक्सपीयर को हर जगह महसूस करना पसंद करूँगी।

टू बी ओर नॉट टू बी!

प्रो. हाइंज़ वर्नर वेसलर से साक्षात्कार

डॉ. शैलजा सक्सेना
हिन्दी राइटर्स गिल्ड-कनाडा की सह-संस्थापिका/ निदेशिका, लेखिका, अभिनेत्री, विश्व हिंदी सम्मान से सम्मानित

प्रो. हाइंस वरनर वेस्लर, भाषा विज्ञान और वाङ्मयशास्त्र विभाग, उप्सला विश्वविद्यालय-स्वीडन, आधुनिक दक्षिण एशियाई भाषाओं और संस्कृतियों के अनुसंधान की एक पुरानी परंपरा को जारी रखते हैं, जहां पहला संस्कृत शिक्षण वास्तव में 1838 में शुरू हुआ था। उनकी पृष्ठभूमि शास्त्रीय इंडोलॉजी में है, लेकिन कई वर्षों से उनका व्यक्तिगत ध्यान हिंदी और उर्दू, और भारत और पाकिस्तान में सांस्कृतिक इतिहास, धर्म और समाज पर है।

शैलजा: हिंदी और संस्कृत की ओर आपकी रुचि कब प्रारंभ हुई?

हाइंज़: जब मैं 15-16 वर्ष का था, उपन्यास 'सिद्धार्थ' को पढ़कर मेरी रुचि हिंदी और संस्कृत में जागृत हुई।

शैलजा: इस रुचि को विकसित कर उसे ही अपनी शिक्षा और व्यवसाय करने की प्रेरणा कैसे मिली?

हाइंज़: बताना मुश्किल है। बहुत कुछ पढ़ लिया पर नौकरी मिलेगी या नहीं, मुझे मालूम नहीं था। संगीत-शास्त्र में और फिर पत्रकारिता में रुचि जगी। भारतीय भाषाएं सीखने की प्रेरणा तो थी पर मुझे विश्वास नहीं हो रहा था कि मुझे इसमें नौकरी मिल जाएगी। बाद में संयोग से या भगवान की कृपा से मुझे वह सब मिला।

शैलजा: आप हिंदी में कैसे और क्यों लिखते हैं?

हाइंज़: पहले कई बार प्रयोग के रूप में हिंदी में लिखने की कोशिश तो ज़रूर की थी, लेकिन वे कोशिशें प्रयोगात्मक ही रहीं। अब कुछ दिन से झुम्पा लाहिरी से प्रभावित हूँ, जिनका लेखन मैं बहुत पहले से पसंद करता था। वे बंगाली समाज की है और अंग्रेजी उनकी स्वाभाविक जुबान है। कुछ साल पहले उन्होंने रोम में बसना और इतालियन में लिखने का फैसला किया। मैं पहले से ही इतालियन विदेशी भाषा के रूप में सीख चुका था और इसलिये मेरी हिम्मत हुई और मैं हिंदी में लिखने लगा। हिंदी मेरी मातृभाषा नहीं है लेकिन मेरे अंदर एक तरह से बसने लगी है; मैं इसे बोलकर और लिखकर कुछ हद तक अपने को आज़ाद समझता हूँ।

शैलजा: संस्कृत, हिंदी या उर्दू आप तीनों भाषाओं की जानकारी रखते हैं। कौन सी भाषा और लिपि सीखना आपके लिए आसान था और क्यों?

हाइंज़: संस्कृत और हिंदी में आम तौर पर संस्कृत की लिपि देवनागरी इस्तेमाल करते हैं। हाँ, वैसे दक्षिण में वे ग्रंथि भी इस्तेमाल करते थे। पहले कश्मीर में शारदा और अरेबिक स्क्रिप्ट भी संस्कृत के लिए इस्तेमाल

करते थे। हिंदी के लिए भी पुराने ज़माने में कुछ लिपियाँ प्रयोग में आती थीं जैसे कायस्थ लोग कैथी इस्तेमाल करते थे। कई स्क्रिप्ट हैं। मोडी भी इस्तेमाल करते थे जो गुजराती और हिंदी के बीच में कुछ है। उर्दू में नास्तालिक और शिक्स्ते भी इस्तेमाल करते थे पुराने समय में, आजकल नहीं है। तो भाषा और लिपि का संबंध किसी तरह से गहरा नहीं है। आजकल लोग समझते हैं कि देवनागरी का मतलब है हिंदी और नास्तालिक का अर्थ है उर्दू, पर ऐसा नहीं है। इसको हम भाषा विज्ञान की तरफ से देखते हैं तो फिर अलग बात है।

शैलजा: क्या उर्दू पर आपको संस्कृत ग्रंथों का प्रभाव भी दिखाई देता है। यदि हाँ तो कहाँ और कैसे?

हाइंज़: संस्कृत ग्रंथों का प्रभाव? हाँ थोड़ा सा है। शायद ग्रंथों का प्रभाव नहीं है पर सोच का है यानी यह जो दक्षिण एशिया की सोच है, जो आजकल हिंदू सोच समझी जाती है, वह तो ज़रूर दिखाई देता है। वह तत्व जो सूफियों का उद्देश्य है, उसे अद्वैतवाद की दृष्टि से देखा जा सकता है आदि, इस तरह की चीजें बहुत हैं लेकिन साहित्य में यह शायद थोड़ा सा अलग सवाल है। ऐसे दाराशिकोह मशहूर है जिन्होंने अनुवाद करवाया।

शैलजा: आप उपसाला विश्वविद्यालय में पढ़ाते हैं पर आपने भारत तथा अन्य विश्वविद्यालयों में भी व्याख्यान दिए हैं तथा वहाँ की शिक्षा प्रणाली की जानकारी भी रखते हैं। आपको अपने विश्वविद्यालय और उन विश्वविद्यालयों की शिक्षा प्रणाली में क्या अंतर दिखता है?

हाइंज़: इसका जवाब देना आसान नहीं है। मेरी जानकारी इतनी अच्छी नहीं है। वैसे बहुत कुछ देखा, भारत और यूरोप में भी अलग-अलग देशों में अलग-अलग तरीके होते हैं। इसका संक्षिप्त रूप से जवाब देना मेरे लिए लगभग नामुमकिन है।

शैलजा: हिंदी भाषा के शिक्षक के रूप में आप अपने विद्यार्थियों को क्या पढ़ाते हैं?

हाइंज़: पहले भाषा पढ़ाते हैं और उसके साथ हम शब्दावली, व्याकरण वगैरा और स्क्रिप्ट - देवनागरी। इसके बाद दूसरे साल में हम इंटरनेट से न्यूज़ आदि निकाल लेते हैं, उन्हें साहित्य में प्रवेश करवाते हैं। ऐसे में हम छोटी-छोटी कहानियाँ लेते हैं। प्रेमचंद से लेकर आधुनिक युग तक - उदय प्रकाश तक, ऐसे ही दलित साहित्य, आदिवासी साहित्य भी पढ़ाते हैं। निर्भर करता है कि विद्यार्थी क्या चाहते हैं। मैं उन्हें छोटे निबंध भी लिखने को देता हूँ और मौखिक अभिव्यक्ति भी होती है, तो कई चीज़ें हैं।

शैलजा: आपने प्रेमचंद से लेकर हिंदी और अन्य भाषाओं के अनेक लेखकों पर गहन अध्ययन करके शोध पत्र लिखे हैं। आपको किस लेखक पर शोध कार्य से सर्वाधिक संतुष्टि या चुनौती मिली और क्यों?

हाइंज़: मैं कई लेखकों को बहुत पसंद करता हूँ। मैं भाषा के संदर्भ से फ़णीश्वरनाथ रेणु को बहुत पसंद करता हूँ पर वह एक चुनौती भी हैं। उनके कई मुहावरे, लोकोक्तियां हैं जो मैथिली से हिंदी और बीच-बीच में बंगाली में भी आते है तो ऐसी कई चीजें हैं जो कठिन हैं, पर मैं समझता हूँ, कि उनका बहुत बड़ा साहित्य है। मैं धर्मवीर भारती को बहुत पसंद करता हूँ। इनकी हिंदी ज़्यादातर प्रेमचंद की हिंदी है। आधुनिक साहित्य में मैं उदय प्रकाश को भी बहुत पसंद करता हूँ, मृणाल पांडे, अजय नावरिया और मनोज चोपड़ा को पसंद करता हूँ। ये सब ऐसे हैं जिनको पढ़कर संतुष्टि मिलती है और चुनौती भी उपस्थित होती है।

शैलजा: हिंदी और उर्दू साहित्य में आप क्या समानता या अंतर देखते हैं?

हाइंज़: निर्भर करता है कि हम पुराने साहित्य की बात कर रहे हैं या आधुनिक साहित्य की।उन्नीसवीं सदी का दूसरा अर्ध, उर्दू साहित्य का युग था, उस समय उर्दू हिंदी से आगे थी, इसमें कोई शक नहीं। नॉवेल वहाँ शुरू हुए। हम उमराव जान अदब पढ़ते हैं, अगर तुलना करें प्रथम महायुद्ध से पहले के हिंदी साहित्य की, तो उसमें आधुनिक उर्दू उससे आगे थी। हिंदी साहित्य का उर्दू से क्या अंतर; तो कभी-कभी लेखकों के बारे में भी इस तरह की प्रतियोगिताएँ होती हैं, जैसे पाकिस्तान में लोग मानते हैं कि प्रेमचंद उर्दू के लेखक हैं और हिंदी की दुनिया में इनको हिंदी का लेखक माना जाता है। दोनों में कुछ सत्य है जैसे 1920 के दशक में, यहाँ तक कि 1930 के बाद भी, प्रेमचंद पहले नास्तालिक में लिखते थे पर उसे हिंदी में अनुवाद करते वक्त, दूसरी शब्दावली का भी प्रयोग किया, देवनागरी स्क्रिप्ट में लिखते, जो पहले प्रकाशित हुआ और फिर उर्दू का वर्जन प्रकाशित हुआ। तो पहले बड़ा अंतर था। अब तो पाकिस्तानी साहित्य और हिंदुस्तानी साहित्य में अंतर, अगर आप पूछती हैं, तो बहुत बड़ा अंतर नहीं है। मैं उपन्यास में भी समानताएँ देखता हूँ। जैसी इम्तियाज़ हुसैन वगैरह की शैली बहुत कुछ प्रेमचंद से मिलती है। और यह भी बहुत दिलचस्प है कि कमाल, जो कराची में सिटी प्रेस चलाते हैं और निर्मल वर्मा, उदय प्रकाश को नास्तालिक में प्रकाशित करते हैं। यह अनुवाद नहीं होता। उसमें नीचे फुटनोट्स में वे ऐसे शब्द, जो पाकिस्तानी लेखकों के लिए मुश्किल हैं, पाकिस्तानी पाठक या उर्दू पाठकों के लिए मुश्किल हैं, उसे समझाते हैं, अभी भी ये दोनों भाषाएँ काफ़ी नज़दीक हैं, बहनें हैं दोनों।

शैलजा: हिंदी आलोचना क्षेत्र की आज की स्थिति के बारे में आपका क्या विचार है?

हाइंज़: मालूम नहीं, मुझको लगता है, बड़े ज़माने से,जबसे रामविलास शर्मा नहीं रहे,जबसे रामचंद्र राव नहीं हैं, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी नहीं है, नामवर सिंह नहीं रहे, राजेंद्र यादव नहीं हैं, विष्णु खरे नहीं हैं, ऐसे लोग आजकल मुझे कम दिखते हैं। थोड़ी सी खेद की बात है कि आलोचना जो अक्सर आलोचना के रूप में लिखी जाती है, वह आजकल समरी अधिक है। ज्यादातर ऐसा ही है, पर हमेशा नहीं। कुछ लोग सच में पढ़ते हैं, जैसे अरुण माहेश्वरी पढ़ते हैं पर आलोचना नहीं लिखते। तो हिंदी के पाठक अभी भी है लेकिन आलोचक कुछ कम हो गए। ऐसा मुझे लग रहा है, शायद मैं गलत हूँ |

शैलजा: आपके प्रिय लेखक कौन है और क्यों? कोई कविता भी बताइए?

हाइंज़: जैसे मैंने कहा था, मैं उदय प्रकाश को बहुत पसंद करता हूँ। फणीश्वर नाथ रेणु, धर्मवीर भारती, अज्ञेय को भी कम से कम पहले बहुत पसंद करता था और इन दिनों के लोगों में नए लोगों में मनोज चोपड़ा का नाम लूँगा। अलग-अलग नाम है! पसंद की कविता है, सूरजपाल चौहान की “यह दलितों की बस्ती है” यह बहुत बड़ी कविता है।

शैलजा: हिंदी पढ़ने वालों की संख्या या रुचि बढ़ाने के लिए आपका क्या सुझाव है?

हाइंज़: किसी भारतीय विश्वविद्यालय में विदेशी भाषा के रूप में हिंदी का पूरा पाठ्यक्रम बनाओ, बी.ए-एम.ए. पी.एच.डी. पोस्ट-डॉक। जो अध्यापक आई.सी.सी.आर की तरफ से विदेश में भेजे जाते हैं, इन अध्यापकों को विदेश जाने से पहले ठीक से शिक्षण देना चाहिए और जैसे हनपन इंस्टिट्यूट या

कनफ़्यूशियस इंस्टीट्यूट-चीन में होता है, कुछ उस तरह का हिंदुस्तान के पास भी होना चाहिए। अब भारत एक सुपर पावर बन रहा है तो फिर यह भी ज़रूरी है। इसका कोई विकल्प नहीं है, यह ज़रूरी है।

शैलजा: विश्व साहित्य के संदर्भ से आपकी हिंदी साहित्य और लेखकों से क्या अपेक्षाएँ हैं?

हाइंज़: लेखकों से यह कि वे वही लिखें जो सचमुच सोचते हैं, न कि सिर्फ हिंदी को आगे बढ़ाना है इसलिए। अपने को हिंदी का प्रचारक समझना मेरे ख्याल से साहित्य के लिए सही नहीं है। साहित्य प्रचार-प्रसार की चीज़ नहीं है। साहित्य के लिए सोच की ज़रूरत है, सही सोच की ज़रूरत है।

शैलजा: आप अनेक देशों की सामाजिक और राजनीतिक स्थिति पर भी लिखते हैं। कृत्रिम मेधा से लेकर युद्ध तक, विश्व जिस तरह बदल रहा है, उसमें आप विश्व की नई पीढ़ी को संवेदना और साहित्य से जोड़ने के संदर्भ में क्या कहना चाहेंगे?

हाइंज़: मैं कहूँगा कि उम्मीद रखो। बहुत चुनौतियाँ हैं। सभ्यता के सामने, न केवल सिर्फ भारत के सामने, बल्कि पूरी दुनिया के सामने चुनौतियाँ हैं। हमारा युग वैश्वीकरण का युग कहा जाता हैं। एक चुनौती है, जलवायु का बदला हुआ रूप, जिसे क्लाइमेट-चेंज कहते हैं। ग्रीन हाउस इफ़ेक्ट हम को डराते हैं। अमेरिका में ट्रंप वाले शायद नहीं मानते! बड़े बेवकूफ़ हैं, लेकिन जो भी हो, मैं मानता हूँ। उम्मीद रखो। अभी भी इस सभ्यता को बचाने के रास्ते हैं। और हाशिए से जो लोग हैं हिंदी के अंदर, हिंदी अपने आप में हाशिये की ज़ुबान है। नए ख्याल उत्पन्न हो सकते हैं और यह बहुत महत्वपूर्ण है कि लोग नई सोच आगे बढ़ाएं। अनेक ख्याल हैं बस, इसके लिए अनेकता में एकता चाहिए, अगर हम इसको गंभीरता से देखें तो। ऐसा नहीं है कि अंग्रेजी फ़ाइनल स्टॉप है; इसलिए बहुत ज़रूरी है कि अनेकता में एकता हो, जिसमें हिंदी का बड़ा योगदान है।

अच्छा साहित्य क्या है, कैसे करें श्रेष्ठ साहित्य का सृजन

सुशील शर्मा
शिक्षक, पत्रकार, कवि और चिंतक।

साहित्य के बिना राष्ट्र की सभ्यता और संस्कृति निर्जीव है। साहित्यकार का कर्म ही है कि वह ऐसे साहित्य का सृजन करे, जो राष्ट्रीय एकता, मानवीय समानता, विश्व-बंधुत्व और सद्भाव के साथ हाशिये के आदमी के जीवन को ऊपर उठाने में उसकी मदद करे। साहित्यकार समाज और अपने युग को साथ लिए बिना रचना कर ही नहीं सकता, क्योंकि सच्चे साहित्यकार की दृष्टि में साहित्य ही अपने समाज की अस्मिता की पहचान होता है। साहित्य जब एक समाज के लिए उपयोगी है तभी तक ग्राह्य है। साहित्य की उपादेयता में ही साहित्य की प्रासंगिकता है। साहित्यकार के अंतस में युगचेतना होती है और यही चेतना साहित्य सृजन का आधार बनती है। श्रेष्ठ साहित्य भावनात्मक स्तर पर व्यक्ति और समाज को संस्कारित करता है उसका युग चेतना से साक्षात्कार कराता है।

श्रेष्ठ साहित्य क्या है? साहित्यिक विधाओं का उद्देश्य क्या है? क्या आत्मसंतुष्टि अथवा सुखानुभूति या प्रेरणा या संदेश या जागृति? संवेदना ही एक ऐसी चीज़ है, जो साहित्य और समाज को जोड़ती है। संवेदनहीन साहित्य समाज को कभी प्रभावित नहीं कर सकता; वह मात्र मनोरंजन कर सकता है।

अगर साहित्य के पूरे इतिहास को सामने रखकर देखा जाए तो सहज ही पता चल जाएगा कि महान साहित्य उसी को माना गया है जिसमें अनुभूति की तीव्रता और भावना का प्राबल्य रहा है। श्रेष्ठ साहित्य एक सार्थक, स्वतंत्र और संभावनाशील विधाओं से जीवन के यथार्थ अंश, खंड, प्रश्न, क्षण, केंद्रबिंदु, विचार या अनुभूति को गहनता के साथ व्यंजित करता है।

श्रेष्ठ साहित्य को मापने का न कोई पैमाना है, न ही कोई मापदंड, क्योंकि साहित्य इतना विराट और इतना सूक्ष्म है कि उसको विश्लेषित करने की सामर्थ्य किसी में भी नहीं है। साहित्य का कार्य चुनौती देना या लेना नहीं है। साहित्य 'सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय' रचा जाता है। इस सर्व में निस्संदेह आत्म भी समाहित होता है। कोई भी रचना किसी प्रकार की निर्धारित औपचारिकताओं के अधीन नहीं होती।

रचनाकार जब जीवन की सूक्ष्म, गहन अनुभूति और विचारों को शिल्पगत निर्धारित तत्वों की सीमा में आबद्ध होकर सही इज़हार दे पाने में दिक्कत महसूसते हैं तो वे शिल्पगत पुराने सांचों को तोड़ फेंकते हैं। श्रेष्ठ साहित्यिक रचना के कुछ मूलभूत संस्कार हैं, जो आम रचनाकार द्वारा पालित किए जाते हैं तो वह उच्च श्रेणी की रचना बन सकती है।

किसी भी साहित्य विधा को श्रेष्ठ कलाकृति के रूप में प्रस्तुत करने के लिए जिन कौशलों की जरूरत होती है उनमें कथानक, शिल्प, वैचारिक पक्ष, शैली, संवेदनीयता और उसका कला पक्ष प्रमुख हैं।

1. रचना कौशल: रचना में मूल वस्तु उसकी वैचारिक अंतर्वस्तु होती है जिसे प्रभावशाली बनाने के लिए हम जिस प्रविधि का उपयोग करते हैं, वही रचना कौशल है। कालजयी वही रचनाएं हो सकीं जिनमें सहज संप्रेषण था। लेखन एक कला है, जो आते-आते आती है। इसे सहजता से स्वीकारने में संकोच क्यों हो। काव्य सृजन उससे भी कठिन है। आयोजनों के लिए रचा गया काव्य सामान्यतया रचनाकार का श्रेष्ठ कृतित्व नहीं होता।

2. कथानक: कथावस्तु में एकतानता, सूक्ष्मता, तीव्रता, गहनता, केंद्रीयता, एकतंतुता और सांकेतिकता आदि होने से रचना की प्रभावशीलता अधिक बढ़ जाती है इसलिए रचना के तत्वों में तीक्ष्णता, तीव्रता और गहनता लाकर वह प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है। चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' की कहानी 'उसने कहा था' को मोटे तौर पर देखें तो 3 विशेषताएं हैं, जो 'उसने कहा था' को कालजयी और अमर बनाने में अपनी-अपनी तरह से योगदान करती हैं। इसका शीर्षक, फलक और चरित्रों का गठन।

3. कथावस्तु: कथावस्तु का विन्यास और घटनाओं का संयोजन भी बड़ा महत्व रखता है, क्योंकि कथावस्तु का विन्यास, घटनाओं के क्रम नियोजन की प्रस्तुति जब रचना में सशक्त होती है, तब वह पाठक को अपनी तरफ खींचती है। हर लेखक अपनी क्षमता के अनुसार कथा विन्यास का उपयोग अपनी रचनाओं में करता है। समय, सत्य और जीवन सत्य के किसी खंड, अंश, कण, कोण, प्रश्न, विचार, स्थिति, प्रसंग को लेकर चलने वाली रचना में कथानक की एक सुगठित, सुग्रथित, सुसंबद्ध और संश्लिष्ट योजना रहती है और उसी के अनुरूप पात्रों, संवादों, भाषा आदि का निर्माण अत्यंत सावधानी से करना पड़ता है।

4. सुस्पष्ट विचार शृंखला: साहित्य में विचारधारा एक विचारदृष्टि के रूप में रहती है और कभी-कभी सृजन के स्तर पर वह भावबोध को निर्धारित भी करती है। 'मुक्तिबोध' ने साहित्य में विचारधारा के उपयोग के लिए 'कामायनी' का मूल्यांकन करते हुए कहा था: 'काव्य रचना जितनी उत्कृष्ट होती है, उसकी प्रभाव क्षमता भी उतनी ही अधिक होती है इसलिए उस काव्य कृति में व्यक्त विचारधारा की प्रभाव शक्ति को ध्यान में रखते हुए उसका मूल्यांकन अवश्य किया जाना चाहिए, लेकिन विचारधारा के मूल्यांकन को काव्यगुण के मूल्यांकन से अलग रखना चाहिए।'

5. कथोपकथन: किसी भी रचना में कथोपकथन का बहुत महत्व है। इसका प्रभावोत्पादक, जानकारीपूर्ण, सहज संप्रेषणीय, सोद्देश्य और सांकेतिक होना आवश्यक है। रचनाकार का आशय या अभिप्राय प्राय: संवादों के जरिए सहजता और सरलता से संप्रेषित हो जाता है। संवाद, रचना का छोटा स्वाभाविक और अत्यंत प्रभविष्णु अंश होता है और उसका एक-एक शब्द सार्थक, सोद्देश्य और महत्वपूर्ण होता है। संवादों के सहारे लघुकथा के अन्य तत्व मुखरित होते हैं।

उपर्युक्त सभी बातें रचना के शिल्प से संबंधित हैं कुछ और विशिष्ट बातें, जो साहित्य को कालजयी बनाती हैं, वे निम्नानुसार हैं-

1. साहित्यकार को इस प्रकार के पात्रों का चयन करना चाहिए, जो सहानुभूति और समझ के साथ विभिन्न सामाजिक वर्गों की एक विस्तृत शृंखला को समाहित कर अलग-अलग परिस्थितियों को दृढ़तापूर्वक वर्णित करने में सक्षम हों और परिस्थितियों पर 'एकल-बिंदु' परिप्रेक्ष्य तक सीमित न हों। आर.के. नारायण की रचनाओं में सर्वाधिक लोकप्रिय 'मालगुड़ी' की पृष्ठभूमि से जुड़ी रचनाएं हैं। 'मालगुड़ी' ब्रिटिश शासनकाल का एक काल्पनिक नगर है। इसमें स्वामी, उसके दोस्त सहित तमाम चरित्र हैं। इसके सारे पात्र खांटी भारतीय चरित्र हैं और सबकी अपनी विशिष्टताएं हैं।

2. किसी भी कालजयी रचना के पात्र मनोवैज्ञानिक गहराई और प्रेरणा की स्पष्टता के साथ दिखाई देते हैं। ये पात्र सत्य, परिवर्तन, विकास या जागरूकता को प्रक्षेपित करते हुए दिखाई देते हैं, साथ ही उस अनुभव को सम्प्रेषित करते हैं, जो समाज में इस तरह के बदलाव का कारण बनने के लिए उपयुक्त हैं।

3. जिस काल में रचना का निर्माण हो, उस काल की युगभावना और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को समाहित

कर गहन कल्पनाशीलता के साथ प्रस्तुति साहित्य को श्रेष्ठता प्रदान करती है। 'तीसरी कसम' कहानी को अगर शास्त्रीय कथानक के ढांचे के अंतर्गत विश्लेषित किया जाए तो हम पाएंगे कि इसमें आदि, मध्य और अंत के निश्चित ढांचे वाला कथानक ढूँढ़ पाना मुश्किल है। इसमें जीवन का एक लघु प्रसंग, उसी प्रसंग से उलझे जुड़े अन्य प्रसंग, मिथक, गीत-संगीत, मूड, सुगंध आदि सब सम्मिलित रूप में मिलकर ही कथानक बन गए हैं।

4. हमें अपनी मानवता और समाज के प्रति हमारे संबंध और हमारे ब्रह्मांड के प्रति हमारे दायित्व का बोध होना चाहिए। प्रेमचंद की अधिकतर रचनाएं उनकी ही गरीबी और दैन्यता की कहानी कहती हैं। उनकी रचनाओं में वे नायक हुए जिसे भारतीय समाज अछूत और घृणित समझता था। उन्होंने सरल, सहज और आम बोलचाल की भाषा का उपयोग किया और अपने प्रगतिशील विचारों को दृढ़ता से तर्क देते हुए समाज के सामने प्रस्तुत किया।

5. साहित्यकार की कृति आने वाली पीढ़ी या समकालीन लेखकों के समक्ष आदर्श प्रस्तुत करती हो या साहित्यकार उसका अनुसरण करने के लिए मानसिक रूप से बाध्य हों तो समझिए आप श्रेष्ठ साहित्य का सृजन कर रहे हैं।

6. अगर आपका साहित्य मनोवैज्ञानिक, आर्थिक और सामाजिक जटिलता, शैक्षिक आंदोलनों, दबे-कुचले शोषित वर्ग को परिभाषित करता है या उस पर बुद्धिजीवियों को सार्थक बहस के लिए प्रेरित करता है तो आप श्रेष्ठ साहित्य का सृजन कर रहे हैं।

7. आपकी लेखन की शैली एक विशिष्ट भाषाशैली, तरीके, शब्दों के विन्यास या विधा तक सीमित नहीं होनी चाहिए।

8. आपके लेखन में औपचारिक अखंडता होनी चाहिए, साहित्यकार को अपनी रचना पर पूर्ण नियंत्रण रखना चाहिए तथा ऐसा कोई भी शब्द या प्रसंग रचना में न हो, जो उस रचना की कथावस्तु से संबंधित न हो। रचना अपना उद्देश्य चरम के साथ प्राप्त करे, यही श्रेष्ठ रचना का लक्षण होता है।

भाषा, साहित्य, व्याकरण, शब्द ज्ञान, रचना कौशल, शिल्प आदि गंभीर अध्ययन और मनन का विषय हैं जिसके लिए पर्याप्त समय, साधन, साधना, गहरी रुचि और समर्पण चाहिए। इनमें से कितना कुछ आज उपलब्ध है? ऐसी पृष्ठभूमि में यह अपेक्षा करना कि हर दृष्टि से शुद्ध साहित्य ही परोसा जाए, केवल दिवास्वप्न समान है। अंतरजाल के विशाल क्षेत्र में पनपते अनेक साहित्य समूहों, ई-पत्रिकाओं के लिए विशुद्ध साहित्यिक सामग्री पर निर्भरता असंभव है।

पाठक तो क्या, अधिकांश रचनाकार भी साहित्य सृजन की बारीकियों से अनभिज्ञ हैं। 80-90 प्रतिशत लेखक व पाठक केवल भावपक्ष या तत्व पक्ष को ही प्रधानता देते हैं। काव्य विधा की कई शाखाएं जैसे सोरठा, कुंडलियां, सवैयां दोहा आदि लुप्त होते जा रहे हैं। किसी भी साहित्य को कालजयी बनाने में दो बातें बहुत महत्वपूर्ण हैं - पहला समय की पहचान और उस काल की संवेदनाओं को आवाज़ देना और दूसरा समकालीन विश्व साहित्य से पूर्ण परिचय और उसके स्तर पर साहित्य रचना।

◇.....◇

ब्रिटेन में गरमियों का मौसम

आशीष मिश्रा
सॉफ्टवेयर आर्किटेक्ट,
लेखक और प्रस्तोता

ब्रिटेन के चारों मौसमों में सबसे अधिक लोकप्रिय है – ग्रीष्म: गरमियों का मौसम। यहाँ अधिकांश समय या तो ठंड रहती है या बारिश, या फिर दोनों। सभी को पूरे साल गरमियों की प्रतीक्षा होती है, जो लगभग मई से सितंबर तक रहती है। यूँ तो वसंत और पतझड़ भी मनोरम हैं लेकिन इस दौरान आप बाहर निकलने के लिए इतना उत्सुक न हों क्योंकि हवाएं काफ़ी तेज़ और ठंडी होती हैं। ब्रिटेन में औसत गरमियों का तापमान 22-25 डिग्री रहता है लेकिन कुछ सप्ताह ऐसे भी होते हैं जब यह बढ़कर 30-32 के आसपास हो जाता है। हालाँकि पिछले कुछ वर्षों में कुछ अपवाद भी हुए हैं जैसे दो साल पहले एक दिन पारा 40 डिग्री को छू गया। इसका मतलब हाहाकार से कम नहीं क्योंकि भारत की तरह यहाँ न तो आम घरों में सीलिंग-फैन लगे होते हैं न ही कूलर अथवा ए.सी.। त्वचा के पिगमेंट्स को दूषित करने के लिए घनी अल्ट्रा-वॉइलेट किरणें नुकसानदायक होती हैं इसीलिए लोग हल्की-सी धूप में भी सनक्रीम का उपयोग करना पसंद करते हैं।

यूँ तो यहाँ पूरे साल बारिश होती रहती है, किंतु यदि गरमियों में कुछ हफ़्तों के लिए बारिश नहीं हुई तो यहाँ के हरे मैदान झुलस जाते हैं, जल-स्रोत सूख जाते हैं। सरकार लोगों को कम से कम पानी उपयोग करने की सलाह देती है जैसे कार या अपने ड्राइववेज़ को न धोने की। ब्रिटिश कवि डेरेक वॉलकोट की एक कविता 'मिडसमर' में इसका सुंदर ज़िक्र है:

सफ़ेद गरमी / एक हरी नदी।
एक पुल / झुलसी हुई पीली पत्तियाँ।
जैसे गरमियों में सोने वाले घर / अगस्त में डूब चुके हैं।
मानों जो दिन मैंने सहेजे थे / वे खोते जा रहे हैं।
मेरे हाथों में दिन ऐसे बड़े हो जाते हैं / जैसे बेटियाँ।

विद्यालयों में मध्य जुलाई से अगस्त के अंत तक छुट्टियाँ होती हैं; लोग छुट्टियाँ मनाने, घूमने-फिरने के लिए महीनों पहले से योजनाएं बना लेते हैं – कुछ सागर किनारे सुंदर रेतीले बीच पर होना पसंद करते हैं तो कुछ साउथ-वैस्ट इंग्लैंड - कॉर्नवाल या किसी पहाड़ी झीलों भरे स्थान जैसे लेक-डिस्ट्रिक्ट, स्कॉटलैंड या फिर नज़दीकी यूरोपीय देश की यात्रा पर निकल जाते हैं। भारतीय अपने मूल देश की गरमी और लू का आनंद उठाने निकल पड़ते हैं - भारत की मिट्टी की सुगंध, लोगों का अपनत्व, परिवारों का मिलन और आम का स्वाद - उन्हें वहाँ गरमी की चिलचिलाहट को भुला देता है।

आम से याद आया - हमारे ब्रिटेन में भी मई से आम आने शुरू हो जाते हैं। मूलतः ये भारत आदि से आयात किए जाते हैं - थोड़े महँगे मिलेंगे जैसे औसतन दस-बीस पाउंड के आठ या दस लेकिन केसर, बदामी, अलफाँसो के स्वाद के आगे क्या महंगा, क्या सस्ता। बहुत से प्रवासी गरमियों में अपने माता-पिता को भारत से यहाँ बुला लेते हैं; यह मौसम उनकी सेहत के लिए उपयुक्त होता है - बाज़ार, स्टेशन या किसी पर्यटन स्थल पर आपको साड़ी-कुर्ते में लिपटे ऐसे बहुत से वरिष्ठ जोड़े मिल जाएँगे।

गरमियों में यहाँ बहुत से मेले और उत्सव आयोजित किए जाते हैं - ग्लास्टनबरि में कलाकारों का जमावड़ा, एडिंगबरा का सांस्कृतिक उत्सव, लंदन में चेलसी फूल मेला, इत्यादि लेकिन जो एक इवेंट विश्व भर में

प्रसिद्ध है, वो है विंबलडन टेनिस टूर्नामेंट, जो लंदन में 1877 से लगातार आयोजित किया जा रहा है। लगभग दो सप्ताह चलने वाला खेलों का लोकप्रियतम टूर्नामेंट जून-जुलाई में होता है; दर्शक स्ट्रिक्ट ड्रेस-कोड वाले परिधान में होते हैं, जो प्रायः पूरी दुपहर पिम्स (जिन, रम) और फलों से लदे पेय, स्ट्रॉबेरीस और आइसक्रीम का लुत्फ़ उठाते हैं।

बहुत-सी बड़ी कंपनियाँ प्रायः समर-पार्टीस, टैरेस-पार्टीस आयोजित करती हैं, बार आदि में जाना आम है लेकिन गरमियों में आपको बियर-बार सैलानियों से भरे मिलेंगे - सभी के हाथों में लम्बा बियर का ग्लास या कोई अन्य पेय होगा। एक और रोचक चलन है - स्ट्रीट पार्टी - गली के निवासियों द्वारा आयोजित, पूरी गली बंद कर दी जाती है - मेज़पोशों से सुसज्जित मेजें, कुर्सियाँ, केक, तरह तरह के पेय और 'पॉटलॉक' यानि घर के बने खाने की साझेदारी; संगीत की लोकप्रिय धुनों पर नाचते गाते लोग आनंद उठाते हैं। यह परम्परा 1919 से चली आ रही है जब प्रथम विश्वयुद्ध के शांति समझौतों के बाद इसे एक सार्वजनिक जश्न के रूप में मनाया गया। गलियों के लैंप-पोस्टों पर लगाई गई बंटिंग, रंगीली झण्डियाँ हमेशा सुस्त पड़े पड़ोस को ऊर्जावान और जीवंत बना देती हैं। स्ट्रीट-पार्टीस अब अन्य अवसरों पर भी आयोजित होने लगी है जैसे कोई रॉयल सेलिब्रेशन – हाल ही में किंग चार्ल्स के राज्याभिषेक के दिन पूरे इंग्लैंड में ऐसी पार्टियाँ आयोजित हुई। एक तरह से ये पुराने दिनों में कैसे लोग पड़ोस में एक साथ मिलजुल कर रहते थे, उसी परंपरा को दोहराते हैं, जो आज की भागमभाग वाली ज़िंदगी में विलुप्त होती जा रही है।

ब्रिटिश समर-टाइम की चर्चा किए बग़ैर बात पूरी नहीं होगी। पुराने ज़माने में रेलवेज़ को, फिर आम कार्यालयों में भी, गरमी और ठंड दोनों में सूर्य के प्रकाश के अधिकतम उपयोग में लाने के उद्देश्य से टाइम सेटिंग्स बनाई गई। ब्रिटिश समर टाइम का अर्थ है एक घंटा सुई पीछे कर देना - मार्च के अंतिम रविवार की रात को 12 बजे - जिससे दिन के दौरान सूरज की रोशनी एक घंटा अधिक मिले। यही कहानी उलट दी जाती है अक्तूबर के अंतिम रविवार को ताकि ठंड में जब सूरज का प्रकाश कम समय के लिए होता है तब उसका भरपूर उपयोग किया जा सके। थोड़ा कन्फ्यूज़िंग है न! बहुत से लोग इस व्यवस्था का विरोध करते आये हैं। हम तो सीधा ये जानते हैं कि सर्दियों में भारतीय समय और ब्रिटिश समय में साढ़े पाँच घंटे का अंतर होता है और गरमियों में साढ़े चार घंटे का। रुचिकर ये भी है कि स्कॉटलैंड आदि में उजाला सुबह साढ़े तीन बजे से होने लगता है। डिनर के समय धूप खिली हो तो कैसा लगेगा - यहाँ गरमियों में सात-आठ सप्ताह लगभग दस बजे रात तक उजाला रहता है।

कुल मिलाकर अगर कहीं स्ट्रॉबेरीस और चेरीस के खेत या फूलों की प्रदर्शनी दिखे, विम्बलडन का खेल चल रहा हो या समुद्री तटों पर जीवन का आनंद उठाते लोग नज़र आयें तो समझ जाएं कि यह हरा-भरा देश ब्रिटेन है - जिसे यहाँ के लोग इतराते हुए 'ग्रेट ब्रिटिश वेदर' की संज्ञा देते हैं।

निपट भी गई। बेटी का विवाह एक डॉक्टर से हुआ और वह दुबई जा बसी, बेटा अपनी बीवी के साथ अमेरिका चला गया।

चाय बनाते वक्त वह यही सोच रही थी कि ये पहली गरमियां हैं कि जब बच्चे घर पर नहीं हैं। कौन जानता है कि कितने बरस उन दोनों को और साथ भोगने हैं, अकेले, बिलकुल तनहा! वह चाय लेकर बैठक में आ बैठी।

इन दिनों वह जल्दी से थक जाती है, शायद यह उम्र का तकाज़ा हो। कुछ सालों में आमिर भी रिटायर्ड हो जाएंगे। फ़ाराह हमेशा पार्ट-टाइम जॉब्स करती रही है पर लगातार थकान की वजह से अब उससे वह भी नहीं होती। शायद वह जीवन की नीरसता से बिलकुल ऊब चुकी है, कैसे गुज़ारेंगे वे इस तरह अपनी ज़िंदगी?

उन्हें यही निर्णय आज लेना है। पहले जब कभी यह प्रश्न उठा है, वे दोनों यही सोच कर मुल्तवी करते रहे हैं कि 'अभी नहीं'। अब जबकि बच्चे अपने अपने घरों में सुरक्षित हैं, माँ बाप चाहते हैं कि वो इस ढर्रे से निकलें, एक दूसरे से आज़ादी पाएं और खुश रहें।

वह उदास हो उठी; कितना अजीब लगता है न कि उन्होंने इतना लंबा समय एक दूसरे को नकारते हुए गुज़ार दिया। ठीक है, उन्होंने कुछ समझौते करने की कोशिश की पर वे काफ़ी नहीं थे। समय के साथ साथ उनमें कुछ बदलाव भी आए। चाय के साथ उसे आज भी मसालेदार नमकीन अच्छा लगता है पर अब उसका पेट इसकी इजाज़त नहीं देता, डॉक्टर्स ने आमिर को भी पीने से सावधान किया है, यदि उसने पीना नहीं छोड़ा तो उसके जिगर को और क्षति पहुंचेगी। बाहर से चीज़ें बदल गयी हैं किन्तु आंतरिक तौर पर कुछ नहीं बदला है। उसे हमेशा लगता है कि वह आमिर के लिए बेमेल है, शायद वह रेगिस्तान का फूल है, जिसे ऐसी जगह बो दिया गया है, जहां हमेशा बारिश होती रहती है, और इस अविरल बारिश ने उसकी जड़ों को सड़ा डाला है। जब कभी सूखा मौसम रुका तो पौधे ने जड़ पकड़नी शुरू की; उम्मीद के एक अंकुर ने सिर उठाया, पर तभी बारिश ने अचानक आकर उसे उजाड़ दिया। ऐसा न जाने कितनी मर्तबा हुआ, साल दर साल।

घड़ी ने साढ़े पांच बजाए और वे घर वापिस आए, थके और ऊबे हुए। उन्होंने रिमोट को हाथ में लिया और सोफ़े पर निढ़ाल हो धंस गए।

'सुनो, अगर तुम बात करना चाहते हो तो मैं चाय बना लूँ, तुम्हें पता है कि मुझे व्हिस्की की बदबू बिलकुल गवारा नहीं।' फ़ाराह ने पूछा। चेहरे पर ख़ालीपन लिए आमिर उसे देख रहा था।

'मुझे आज कोई ड्रिंक नहीं चाहिए, बहुत थकान लग रही है,' हमेशा की तरह, आमिर आज चैनल्स भी नहीं बदल रहा था। अपनी चाय लिए फ़ाराह कमरे में आ गयी; दोनों एक लंबे समय तक चुपचाप बैठे रहे।

'मेरा एक दोस्त अमेरिका से वापिस आया है, वह वहाँ हमारे बेटे से भी मिला था, कह रहा था कि वह वहाँ बहुत अच्छे से सेटल हो गया है, उसकी नई जॉब अच्छी है। वह हम दोनों को अमेरिका में रहने के लिए बुलाना चाहता है।' आखिर में आमिर ने ख़ामोशी तोड़ी, फिर उसने रुक कर और कुछ अटकते हुए पूछा, 'क्या तुम चलोगी वहाँ? तुम चलोगी न हमारे बेटे के पास?'

फ़ाराह खिड़की के बाहर तक रही थी। हनी-सकल बाढ़ पर छा गयी थी और उसकी नाज़ुक डालियों के सहारे ऊपर चढ़ रही थी, एक जंगली बेल भी। कितनी बार उसने इस जंगली बेल को खींच के अलग फेंका है पर वह जल्दी ही हनी-सकल को फिर फिर दबोच लेती है। वह सोचती है कि विज्ञान के हर सिद्धान्त के अपवाद हैं - शायद हनी-सकल और जंगली बेल दोनों पैरासाइट्स हैं - मुफ़्तख़ोर, जो एक दूसरे की दया पर जीवित हैं, शायद वे एक दूसरे के बिना नहीं जी सकते।

◇.....◇

वर्षा ऋतु व हिंदी रचनाकार

डॉ. संध्या सिलावट
उपायुक्त, राज्य कर-
मध्यप्रदेश

ज्येष्ठ महीने की तन को झुलसाने वाली ग्रीष्म के बाद, आषाढ़ की उमस से भरी गरमी के बाद लोगों की तीव्रतर इच्छा होती है कि बरखा आए, शीतल मेघ बरसा सबकी उष्णता को शांत कर दे। आकाश में घिरे बादल सभी को भावी वर्षा ऋतु का संदेश देने लगते हैं। वर्षा काल में श्रावण व भाद्रपद होते महीने हैं।

वर्षा ऋतु को पावस भी कहते हैं, प्रेमी युगलों से लेकर किसान तक जिसकी प्रतीक्षा करते हैं। केशव ने पावस हेतु लिखा है:

वर्षा हंस-पयान, बक-दादुर-चातक-मोर।
केतकि पुष्प-कदंब-जल, सौदामिनि घनघोर।।

आठवीं सदी से लेकर वर्तमान तक के रचनाकार वर्षा का वर्णन अपनी रचनाओं में करते आ रहे हैं। वियोगियों के लिए दुःखदायी और किसान के मुख पर हँसी बिखरने वाली इस ऋतु की हिंदी साहित्य में यात्रा देखिए।

कौसल निवासी स्वयंभू (आठवीं सदी) जैन कवि थे, इन्होंने 'पउम चरिय' (पद्म चरित) और 'हरिवंश पुराण' नामक महाकाव्यों की अपभ्रंश भाषा में रचना की। स्वयंभू ने वर्षा का बहुत ही मनोहारी वर्णन किया है - दावानल के समान आकाश में मेघजाल फैलने लगा। ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो पावस राजा यश की कामना से मेघ महागज पर बैठकर, इन्द्रधनुष हाथ में लेकर, ग्रीष्म नराधिप पर चढ़ाई करने के लिए सन्नद्ध हो रहा हो। जब पावस राजा ने गर्जना की तो ग्रीष्म राजा ने धूलि-का वेग छोड़ा, वह जाकर मेघ-समूह से चिपट गया।

परन्तु पावस राजा ने बिजली की तलवारों के प्रहार से उसे भगा दिया। जब वह धूलिवेग (बवण्डर) उलटे मुँह लौट आया, तो ग्रीष्म वेग पुनः उठा। वहाँ पहुँचकर वह धकधकाता और हँसता हुआ जल-जलकर प्रदीप्त हो उठा; चिंगारियाँ छूटने लगीं। उसने धूमावलि के ध्वजदण्ड उखाड़कर तूफ़ान की तलवार से प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया। तरुवररूपी शत्रु-समूह भग्न होने लगे। मेघ घटा विघटित हो उठी। इस प्रकार ग्रीष्म राजा, पावस राजा से भिड़ गया तब पावस ने बिजली की टंकार करके इन्द्र-धनुष पर डोरी चढ़ा ली। जलधर की गजघटा को प्रेरित किया, और बूँदों के तीरों की बौछार शुरू कर दी। महाकवि स्वयंभू की कुछ पंक्तियाँ देखिए:

अमर महद्धणु गहिय करे, मेह गइन्द्रे चडिवि जस-लुद्धउ।
उप्परि गिंभ-णराहिवहो, पाउस-राउ णाइँ सण्णद्धउ।।
जे पाउस-णरिन्दु गलगज्जिउ। धूली रउ गिंभेण विसज्जिउ।।
गंपिणु मेह विंदि आलग्गउ। तडि करवालु पहारेहिं भग्गड।।
जं वि वरम्मुहु चलिउ विसालउ। उट्ठिउ हण-हणंतु उण्हालउ।।
धग-धग-धग-धगंतु उद्धाइउ। हस-हस-हस-हसंतु संयाइउ।।
जल-जल-जल-जलंतु पयलंतउ। जालावलि फुलिंग मेल्लंतउ।।
घूमावलि-घय-दड व्भेप्पिणु। वर-वाउल्लि-खग्ग कड्ढेप्पिणु।।
झड़-झड-झड़-झड़तु पहरतउ। तरुअर-रिउ भड-थड-भज्जतउ।।

मेह-मेहग्गय-घड विहडंतउ। जं उण्हालउ दिट्ठु भिडंतउ।।
पाउस-राउ ताव सपत्तउ। जल-कल्लोल-सति पयडतउ।।
धणु अप्फालिउ पाउसेण, तडि-डकार-फार दरिसतउ।।
चोइवि जलहर-हत्थि-हड, णीर सरासणि मु
क्क तुरतउ।।

पुष्पदंत (दसवीं सदी) इनकी प्रसिद्ध रचना ''महापुराण को जैन अत्यंत आदर से देखते हैं। अपभ्रंश भाषा के महाकवि पुष्पदंत पावस पर कहते हैं, सीता वियोग में दुःखी राम वर्षाकाल की प्रकृति को देख रहे हैं:

णच्चंति मोर मज्जंति कंक। पंथिय वहंति मणि गमणसंक।।
चल चायय तण्हाहय लवंति। पउरंदरीउ जललउ पियंति।।
पवसियपियाउ दुहसल्लियाउ। महमहियउ जाइउ फुल्लियाउ।।
दिसपसरिय केयइकुसुम रेणु। चिक्खिल्लें तोसिय किडि करेणु।।
बरिसंतें देवें भरिउ देसु। जलु थलु संजायउं णिब्बिसेसु।।
एक्कहि मिलियाइं दिसाणणाइं। पप्फुल्ल कयंबइ काणणाइं।।
अवलोइवि रामु विसायगत्थु। थिउ णियकओलि संणिहियहत्थु।।

मयूर नाचते हैं, बगुले डुबकियाँ लगाते हैं। प्यास से व्याकुल चंचल चातक चिल्लाने लगे और मेघों का पानी पीने लगे। प्रोषित-पतिकाएँ दुःख से पीड़ित हो उठीं। जूही की लताएँ महकने लगीं। केतकी कुसुम पराग दिशाओं में प्रसारित होने लगा। गज और सुअर कीचड़ से प्रसन्न हो उठे। मेघराज के बरसने पर देश (जल से) भर गया। जल और स्थल निर्विशेष हो गए। दिशाओं के मुख एकाकार हो गए। काननों में कदम्ब के पुष्प खिल गए। विषादग्रस्त राम उसे देखकर अपने गाल पर हाथ रखकर बैठ गए।

अब्दुर्रहमान ने 12वीं सदी के उतरार्द्ध और 13वीं सदी के प्रारंभ में 'संदेशरासक' खंड काव्य रचा। इन्होंने वर्षाकाल के वातावरण व विरहिणी की दशा का वर्णन किया है। वह पथिक से कहती है कि यह पावस मुझे प्रिय के बिना अत्यधिक कष्ट दे रहा है:

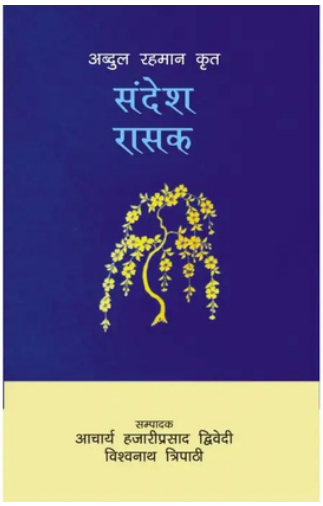

बगु मिल्हवि सलिलद्दहु तरुसिहरिहि चडिउ,
तंडवु करिवि सिंहडिहि वर सिहरिहि रडिउ।
सलिल निवहि सालूरिहि फरसिउ रसिउ सरि,
कलयलु किउ कलयंठिहि चडि चूयह सिहरि।।
णाय णिवड पहरुद्ध फणिदिहिँ दह दिसिहिँ,
हुइय असंचर मग्ग महंत महाविसिहिँ।
पाडलदलपरिखंडणु नीरतरंग भरि,
ओरुन्नउ गिरि सिहरिहि हंसिहि करुण सरि।।
मच्छरभय संचडिउ रन्नि गोयंगणिहि,
मणहर रमियइ नाहु रंगि गोयंगणिहि।

बगुले जलाशयों को छोड़कर वृक्षों पर चढ़ गए। तांडव करते हुए मोर शिखरों पर बोलने लगे। मेंढ़क जलाशयों में कर्कश स्वर करने लगे। आम के शिखर पर चढ़कर कोकिलों ने कुहू-कुहू शब्द किया। नागों से दसों दिशाओं के पथ रुद्ध हो गए। अत्यधिक जल के कारण मार्गों पर आवागमन बंद हो गया। जल भार से बादल फट गए। पर्वत की चोटियों पर हंसों ने करुण स्वर से रोदन किया। मच्छरों के भय से गौओं का समूह ऊँचे स्थल पर चढ़ गया। युवतियाँ अपने पतियों के साथ मनोहर कीड़ाएँ करती हैं। धरती हरे-भरे कदंबों से सुगंधित हो गई।

मलिक मुहम्मद जायसी (1477-1542) भक्ति काल की निर्गुण प्रेमाश्रयी धारा के अत्यंत उच्चकोटि के सरल और उदार कवि थे। सिंहल देश की राजकुमारी पद्मावती और चित्तौड़ के राजा रत्नसेन की प्रेम कहानी पर आधारित, इनका महाकाव्य पद्मावत प्रसिद्ध है। इसमें सावन का वर्णन है:

चमक बीजु, बरसै जल सोना। दादुर मोर सबद सुठि लोना।
रँग-राती पीतम सँग जागी। गरजे गगन चौंकि गर लागी।।
सीतल बूँद, ऊँच चौपारा। हरियर सब देखाइ संसारा।
हरियर भूमि, कुसुंभी चोला। औ धनि पिउ सँग रचा हिंडोला।।

बिजली चमकती है, संसार में सोना-सा बरसता है। दादुर और मोर का शब्द अति सुंदर लगता है। प्रिय के संग प्रेम-रस में सनी हुई युवती रात में जागती है और मेघों के चमक कर गरजने से चौंककर प्रिय का कंठालिंगन करती है। ऊँचे चौबारे पर शीतल बूँदें पड़ रही हैं। सारा संसार हरा-हरा दिखाई पड़ रहा है। भूमि पर हरियाली छा गई तो युवती ने कुसुंभी चोला पहना और प्रिय के संग में हिंडोला सजाया।

तुलसीदास (1532-1623) रामचरितमानस के किष्किंधाकांड में वर्षाकाल का वर्णन श्रीराम के मुख से करवाते हैं। उनके मुख से भी कहलाते हैं कि सीता के बिना बादलों का गरजना उन्हें डराता है। वर्षाकाल में होने वाली सभी प्राकृतिक घटनाओं जैसे बिजली का चमकना, बूंदों का आघात आदि घटनाओं के माध्यम से वे मनुष्य के सद्गुणों और दुर्गुणों का वर्णन बहुत भी सहज ढंग से करते हैं और पाठक को भी सहमत करते प्रतीत होते हैं। उदाहरण देखिए:

घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा।।
दामिनि दमक रहन घन माहीं। खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं।।
बरषहिं जलद भूमि निअराएँ। जथा नवहिं बुध बिद्या पाएँ।।
बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के बचन संत सह जैसें।।
समिटि समिटि जल भरहिं तलावा। जिमि सदगुन सज्जन पहिं आवा।।
सरिता जल जलनिधि महुँ जोई। होइ अचल जिमि जिव हरि पाई।।

आकाश में बादल घुमड़-घुमड़कर घोर गर्जना कर रहे हैं, प्रिया (सीताजी) के बिना मेरा मन डर रहा है। बिजली की चमक बादलों में ठहरती नहीं, जैसे दुष्ट की प्रीति स्थिर नहीं रहती। बादल पृथ्वी के समीप आकर (नीचे उतरकर) बरस रहे हैं, जैसे विद्या पाकर विद्वान् नम्र हो जाते हैं। बूँदों की चोट पर्वत कैसे सहते हैं, जैसे दुष्टों के वचन संत सहते हैं। जल एकत्र हो-होकर तालाबों में भर रहा है, जैसे सद्गुण (एक-एककर) सज्जन के पास चले आते हैं। नदी का जल समुद्र में जाकर वैसे ही स्थिर हो जाता है, जैसे जीव श्री हरि को पाकर अचल (आवागमन से मुक्त) हो जाता है।

केशवदास (1555-1617) रीति-काव्य के प्रथम आचार्य, हिंदी, संस्कृत, संगीत, धर्मशास्त्र, ज्योतिष और राजनीति के ज्ञाता थे। केशव 'कविप्रिया' में अथ आषाढ़-वर्णन-छप्पय में कहते हैं कि श्रावण मास में वर्षा से नदियों में बाढ़ आने से समुद्र में मिलने के दृश्य को देख कितना सुखद आनंद होता है। छोटे छोटे जीव-जंतु वर्षा से प्रसन्न हो वृक्षों पर विहार कर रहे है। बिजली कड़क कर बादलों से झांकती प्रतीत होती है।

'केसव' सरिता सकल मिलित सागर मन मोहैं।
ललित लता लपटात तरुन तन तरबर सोहैं।
रुचि चपला मिलि मेघ चपल चमकत चहुँ ओरन।

अब्दुर्ररहीम खानखाना (रहीम) (1556-1627) रहीम कुशल राजनीतिवेत्ता, वीर योद्धा होने के साथ ही मर्मस्पर्शी रचनाकार भी थे। वर्षा ऋतु के माध्यम से उनका अवसरवादी व अयोग्य व्यक्तियों के प्रभाव का एक बरवै देखिए:

पावस देखि रहीम मन, कोइल साधे मौन।
अब दादुर बक्ता भए, हमको पूछत कौन॥

वर्षा ऋतु को देखकर कोयल और रहीम के मन ने मौन साध लिया है। अब तो मेंढक ही बोलने वाले हैं। हमारी तो कोई बात ही नहीं पूछता। अभिप्राय यह है कि कुछ अवसर ऐसे आते हैं जब गुणवान को चुप रह जाना पड़ता है, उनका कोई आदर नहीं करता और गुणहीन वाचाल व्यक्तियों का ही बोलबाला हो जाता है।

सेनापति (जन्म 1589) अपने ऋतुवर्णन के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं। इनके जैसा ऋतु-वर्णन हिंदी-साहित्य में बहुत कम रचनाकार कर पाए हैं। वर्षा-ऋतु का चित्रण देखिए:
बरसत घन, गरजत सघन, दामिनि दिपै अकास।
तपति हरी, सफलौ करी, सब जीवन की आस।।
सब जीवन की आस, पास नूतन तिन अनगन।
सोर करत पिक-मोर, रटत चातक बिहंग गन।।
गगन छिपे रवि-चंद, हरष 'सेनापति' सरसत।
उमँगि चले नद-नदी, सलिल पूरन सर बरसत।।

घनानंद (1689-1739) रीतिकाल की काव्यधारा रीतिमुक्त के अंतिम कवि हैं। शुक्ल जी के विचार में ये नादिरशाह के आक्रमण के समय मारे गए। वर्षा के सभी घटक कवि को उनकी प्रेमिका के वियोग में अत्यंत कष्ट दे रहे हैं:

कारी कूर कोकिल! कहाँ कौ बैर काढ़त री,
कूकि-कूकि अब ही करेजौ किन कोरि लै।
पैढ़ परे पापी ये कलापी निसि-द्यौस ज्यों ही,
चातक घातक त्यों ही तुहूँ कान फोरि लै।।

हे काली-कलूटी क्रूर कोकिला! तू मुझसे कब का बदला चुका रही है। यदि कुहूकने का इतना ही मन हो रहा है तो इतना अधिक कूक कि उससे मेरा कलेजा निकल जाए। कोयल तो अपना बैर निकाल ही रही है, पापी मोर भी मेरे पीछे पड़ गए हैं। रात-दिन ये प्राणी बोलकर सताते रहते हैं। हे चातक! तू भी मेरे लिए घातक हो रहा है। तू भी इतना अधिक बोल ले कि मेरे कानों को फोड़ डाल।

नज़ीर अकबराबादी (1735-1830) प्रसिद्ध कवि थे, इन्हें 'नज़्म के पिता' भी कहा जाता है। इनकी कविताओं में लोक जीवन, ऋतुओं, त्यौहारों, फलों, सब्जियों, सामाजिक मुद्दों और प्रकृति का वर्णन मिलता है। वर्षा में होने वाले कीचड़ का इन्होंने कितना यथार्थ वर्णन किया है:

कितने तो कीचड़ों की दलदल में फंस रहे हैं।
कपड़े तमाम गंदे दलदल में बस रहे हैं।
कितने उठे हैं मर-मर, कितने उकस रहे हैं।
वह दुःख में फंस रहे हैं और लोग हंस रहे हैं।
क्या-क्या मची हैं यारों बरसात की बहारें।।

मैथिलीशरण गुप्त (1885-1965) हिन्दी कविता के इतिहास में खड़ी बोली के प्रथम महत्वपूर्ण कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं। इन्होंने जीवन-दायिनी के रूप में वर्षा ऋतु का महत्व गाया है:

जलद कर रहे हैं नम्र हो नीर-दान
सतत बढ़ रहे हैं धान शोभा-निधान।
सुखयुत करते हैं कोकिला-मोर गान,
प्रमुदित निज जी में हो रहे हैं किसान॥

रामधारी सिंह दिनकर (1908-1974) को राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत, संघर्ष की प्रेरणा देने वाली और वीर रस की कविताओं के कारण 'राष्ट्रकवि' कहा जाता है। वसन्त व वर्षा ऋतुओं के माध्यम से कवि ने सीता को अकारण मिले दुःख का निरूपण किया है:

राजा वसन्त वर्षा ऋतुओं की रानी
लेकिन दोनों की कितनी भिन्न कहानी
राजा के मुख में हँसी कण्ठ में माला
रानी का अन्तर द्रवित दृगों में पानी।

नागार्जुन (1911-1998) वामपंथी विचारधारा और भारतीय वर्ग-संघर्ष के रचनाकार हैं। वे घुमंतू व्यक्ति थे। बारिश की अनिश्चितता का चित्रण कर रहे हैं:

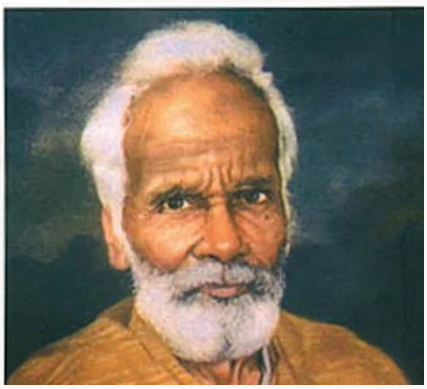

वो मटमैली ओढ़नी
बादलों को ढक लेगी अब
अब फुहारोंवाली बारिश होगी
बड़ी-बड़ी बूँदें तो यह
शायद कल बरसेंगे...
शायद परसों...
शायद हफ़्तों बाद...

इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्षा काल ने रसिक मन को सदा ही प्रभावित किया है। मनुष्य भौतिक साधनों से संपन्न होकर स्वयं को आधुनिक तो समझने लगा है परंतु उसका अंतर्मन तो आदिकाल के मानव जैसा ही है।

◇.....◇

बचपन को अख़बारों में जगह क्यों नहीं?

प्रियंका सौरभ
रिसर्च स्कॉलर इन पोलिटिकल साइंस, कवयित्री, स्वतंत्र पत्रकार एवं स्तंभकार

रविवार की सुबह थी। मन हुआ कि बेटा प्रज्ञान गोद में आए और हम दोनों मिलकर अख़बार में से कोई रोचक कहानी पढ़ें ताकि आधुनिक स्क्रीन युग में भी शब्दों की मिठास उसे मिल सके। परंतु खेदजनक आश्चर्य हुआ कि प्रतिष्ठित अख़बारों में बच्चों के लिए एक भी कहानी, चित्रकथा, या बाल संवाद उपलब्ध नहीं था। इस पीड़ा से उपजा यह सवाल एक सामूहिक चिंतन की मांग करता है - "जब हम अपने अख़बारों में बच्चों के लिए छापते ही कुछ नहीं, तो हम उनसे पढ़ने की उम्मीद किस अधिकार से करते हैं?"

बाल मन: एक रिक्त पन्ना

हमारी शिक्षा व्यवस्था, अभिभावक वर्ग और समाज तीनों ही अक्सर एक स्वर में कहते हैं कि आज के बच्चे किताबें नहीं पढ़ते। वे मोबाइल, इंस्टाग्राम और गेमिंग की दुनिया में खो चुके हैं। पर कोई यह क्यों नहीं पूछता कि उन्हें क्या पढ़ने के लिए दे रहे हैं हम? अख़बार, जो एक समय में हर घर की सुबह का हिस्सा हुआ करता था - अब बच्चों के लिए पूरी तरह से एक "वयस्कों का युद्धक्षेत्र" बन चुका है, राजनीति के झगड़े, नेताओं के आरोप-प्रत्यारोप, बलात्कार, हत्याएं, भ्रष्टाचार, क्रिकेट, फिल्में और योगा टिप्स। कहाँ हैं राजा की बात, हाथी की सवारी, विज्ञान की कल्पना, चाँद की कविता, और जीवन मूल्य सिखाती छोटी कहानियाँ?

आज के समाचार पत्रों में बच्चे सिर्फ दो तरह से "दिखते" हैं - जब कोई बच्चा यौन हिंसा या हत्या का शिकार होता है। या जब कोई बच्चा बोर्ड परीक्षा में 99.9% अंक लाकर मीडिया का ताज बन जाता है। क्या इतने सीमित संदर्भों में बच्चे होने का अनुभव समझा जा सकता है? अख़बारों ने बच्चों को समाज से अलग करके एक ऐसी चुप्पी में डाल दिया है, जहां उनका न तो रचनात्मक स्वर सुनाई देता है, न जिज्ञासु आंखें दिखाई देती हैं।

किसी भी अखबार का मुख्य उद्देश्य होता है - समाज को जागरूक बनाना और उसकी सोच को दिशा देना - तो फिर एक पूरे समाज की नींव यानी बच्चों के लिए कोई पन्ना क्यों नहीं? क्या आज का संपादक इतना व्यस्त हो गया है कि उसे यह भी याद नहीं कि उसकी जिम्मेदारी अगली पीढ़ी तक संस्कार और विचार की मशाल पहुँचाने की भी है? एक समय में 'बाल-जगत', 'बाल प्रभा', 'बाल गोष्ठी', 'बाल मेल' जैसे खंडों से अख़बार बच्चों को भी संवाद में शामिल करते थे। आज वे या तो बंद हो गए हैं या ऑनलाइन लिंक की बेगानी भीड़ में खो गए हैं।

विज्ञापन और बाजारवाद का हमला - बच्चे आज अख़बार के लिए 'ग्राहक' नहीं हैं। वे शैंपू या रेफ्रिजरेटर नहीं खरीदते। इसी कारण "बाजार" की भाषा में उनकी कोई 'विज्ञापन वैल्यू' नहीं है। और जहाँ विज्ञापन की भाषा नीति तय करने लगे, वहाँ बचपन बेमानी हो जाता है। प्रत्येक अख़बार का लगभग 40% भाग विज्ञापनों से भरा रहता है - रियल एस्टेट, कपड़े, कोचिंग सेंटर, हॉस्पिटल, ब्रांडेड घड़ियाँ... कहीं भी यह नहीं दिखता कि कोई अख़बार यह पूछ रहा हो - "बच्चों को हम क्या पढ़ा रहे हैं?"

बाल साहित्य केवल मनोरंजन नहीं है, यह बच्चों को सोचने, सवाल करने, कल्पना करने और समाज से जुड़ने की प्राथमिक पाठशाला है।एक कहानी जिसमें एक पेड़ अपने फल देता है, एक चिड़िया घोंसला

बनाती है, एक बच्चा अपने दोस्त के साथ पक्षियों को पानी पिलाता है - ये सब बच्चों को मानवता का बीज देते हैं। जब ये कहानियाँ हट जाती हैं, तो वहां केवल ड्रामा, सनसनी, और डेटा बचता है। और यही संवेदनहीनता आने वाली पीढ़ी में पनपती है।

क्या पढ़ाई और ज्ञान सिर्फ स्कूल का काम है? हमारे समाज ने बच्चों के ज्ञान का ठेका सिर्फ स्कूलों को दे रखा है। अख़बार, जो कभी 'घर की पाठशाला' हुआ करता था, अब स्वयं को 'वयस्कों की गॉसिप' तक सीमित कर चुका है। क्या बच्चे समाचारों के योग्य नहीं? क्या विज्ञान, पर्यावरण, नैतिकता, और समाज की बातें उन्हें नहीं बताई जानी चाहिए?

यदि हम चाहते हैं कि बच्चे समझदार नागरिक बनें तो हमें उन्हें शुरुआत से ही संवाद और सवालों से जोड़ना होगा और अख़बार इसकी सशक्त जगह हो सकती है। क्या किया जा सकता है? साप्ताहिक 'बाल संस्करण' पुनः शुरू किए जाएं – हर रविवार या महीने में दो बार बच्चों के लिए विशेष खंड हो। बाल संवाद और चित्रकथाएँ हों – जिनमें नैतिक मूल्य, विज्ञान की जिज्ञासा और समाज का परिचय हो। बच्चों की रचनाएँ छापी जाएं – कविताएँ, चित्र, सवाल, विचार। बाल पत्रकारिता को बढ़ावा दिया जाए, विद्यालय स्तर पर बच्चों से लिखवाया जाए, जो छपे भी। प्रेरणादायक 'बच्चों के नायक' दिखाए जाएं, जो स्क्रीन के बाहर भी उपलब्ध हों। जब अख़बार समाज का दर्पण होते हैं, तो इस दर्पण में प्रज्ञान जैसे लाखों बच्चों की मासूम जिज्ञासा को जगह मिलनी ही चाहिए। यदि हम चाहते हैं कि कल के भारत में पाठक, लेखक और संवेदनशील नागरिक जन्म लें तो आज के समाचार पत्रों में प्रज्ञान के लिए भी एक पन्ना आरक्षित करना होगा।

महाभारत

ब्रिटिश फ़िल्म संस्थान के आई.एम.एक्स. थिएटर में पीटर ब्रूक द्वारा निर्मित फ़िल्म 'महाभारत' के एक नये संस्करण को देखने का मौका मिला, जिसे पीटर ब्रुक के बेटे साइमन द्वारा 8K संस्करण में प्रेम और धैर्यपूर्वक पुनर्स्थापित किया गया है, जो स्वयं एक फिल्म निर्देशक हैं। फ़िल्म से पूर्व साइमन ने बताया कि रिलीज़ के बाद फ़िल्म का क्या हुआ और उसके अधिकार प्राप्त करने के लिए उन्हें कैसे संघर्ष करना पड़ा। उन्हें कहानी से ही प्रेरणा मिली। 1985 में ब्रुक द्वारा प्रस्तुत मूल नाटक नौ घंटे लंबा था और चार साल तक दुनिया भर में खेला जाता रहा। ब्रुक सीनियर ने महान भारतीय महाकाव्य और आध्यात्मिक यात्रा को पश्चिम में इस तरह प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया जैसा पहले कभी नहीं हुआ था।

भारतीय उच्चायुक्त और कैरी सौनी के अतिरिक्त बहुत से मशहूर कलाकार और साहित्यकार उपस्थित थे। दर्शक पौपकॉर्न, पेय और चौकलेट के बड़े बड़े बक्से लिए बैठे थे कि बिना अंतराल की इस लंबी फ़िल्म को कैसे देखेंगे किंतु तीन घंटे कब बीते, पता ही नहीं चला; 500 दर्शक मंत्रमुग्ध बैठे रहे। मुझे आश्चर्य यह हुआ कि भारतीय इस जटिल कहानी को जानते हैं किंतु 50% विदेशी दर्शक इसे कैसे समझे होंगे?

1989 में इसका संक्षिप्त रूपांतरण, जो लगभग छह घंटे का था, एक टेलीविजन लघु-शृंखला के रूप में बनाया गया। इसे सिनेमाघरों में रिलीज़ के लिए लगभग तीन घंटे के कट में संपादित किया गया। पटकथा ब्रुक, जीन-क्लाउड कैरिएर और मैरी-हेलेन एस्टियेन की आठ साल की मेहनत का नतीजा थी। संगीत निर्देशक थे रवीन्द्रनाथ टैगोर, जिनका मधुर संगीत अब तक मेरे कानो में गूंज रहा है। अंतरराष्ट्रीय कास्टिंग ने मन पर अमिट छाप छोड़ी - कुंती (मिरियम गोल्डस्मिड्ट), धृतराष्ट्र (रिस्ज़र्ड सिस्लाक), गांधारी (हेलेन पैटरोट), कर्ण (जेफरी किसून), कृष्ण (ब्रूस मायर्स) और द्रौपदी (मल्लिका साराभाई) के अभिनय प्रभावित करते हैं।

कहानी दो युद्धरत परिवारों, पांडवों और कौरवों के बीच की घटनाओं से जुड़ी है। कथानक ऋषि व्यास और गणेश के बीच एक संवाद द्वारा रचित है, और एक अनाम लड़के को बताई जा रही है, जो मानव जाति की कहानी जानने आता है। दोनों पक्ष - राजाओं और देवताओं की संतान होने के नाते - प्रभुत्व के लिए संघर्ष करते हैं। कौरवों को डर है कि पांडव अपने पिता का सिंहासन चाहते हैं। युधिष्ठिर को भगवान कृष्ण बताते हैं कि वे राजा बनेंगे हालाँकि कृष्ण ने दोनों को सद्भाव से रहने और सत्ता की खूनी लालसा से दूर रहने की सलाह दी किंतु उनके झगड़े ब्रह्मांड की व्यवस्था के लिए खतरा बन जाते हैं।

छन्द-सलिला: सोरठा

प्रो मधु चतुर्वेदी
प्रोफ़ेसर
श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय

(इस स्तम्भ में छन्द संरचना के नितान्त शास्त्रीय स्वरूप की मीमांसा करने के बजाय हमारा प्रयास केवल यह है कि नवसर्जकों को सरल किन्तु शुद्ध सर्जन हेतु कुछ सहजगम्य दिशा-निर्देश दिये जा सकें।)

हिन्दी काव्य के विविध छन्दों की संरचना की शृंखला के अंतर्गत इस बार प्रस्तुत है, बहुग्राह्य व बहुप्रिय छन्द 'सोरठा'।

'सोरठा' भी दोहे की भाँति एक अर्द्ध सममात्रिक छन्द है किन्तु यह दोहे का विपर्यय है। अर्थात जहाँ दोहे की दो पंक्तियों में मात्राओं की युति तेरह-ग्यारह के क्रम में रहती है वहीं सोरठे में यह युति उलटी होकर ग्यारह-तेरह का क्रम ले लेती है। दोहे की दो पंक्तियों के चार चरणों में प्रथम व तृतीय चरण तेरह मात्राओं पर यति लेते हैं और द्वितीय व चतुर्थ चरण ग्यारहवीं मात्रा पर विराम। सोरठे की प्रक्रिया ठीक इसके विपरीत है। सोरठे की भंगिमा इसलिए भी दोहे से पृथक है कि इसमें दूसरे व चौथे चरण में तुकान्त न होकर प्रथम व तृतीय चरण में तुकान्त होता है। द्वितीय व चतुर्थ चरण में तुकान्त की कोई अनिवार्यता नहीं है किन्तु कुछ कवि अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखाते हुए चारों चरणों में तुकान्त रखते हैं। अब हम इसे तुलसीकृत रामायण के दो बहुश्रुत सोरठों के उदाहरण से समझेंगे:

जानि गौरि अनुकूल, सिय-हिय हरष न जात कहि।
मंजुल मङ्गल मूल, वाम अङ्ग फरकन लगे।।
जो सुमिरत सिधि होई, गननायक करिवर बदन।
करहु अनुग्रह सोई, बुद्धि रासि शुभ-गुन सदन॥

दिलचस्प बात यह है कि सोरठे को उलटा कर दें तो वह दोहा बन जाएगा और दोहे को उलटे क्रम में लिख दें तो वह सोरठा हो जाएगा।
इस बात को मैं अपने एक स्वरचित दोहे द्वारा स्पष्ट कर रही हूँ -
लाभ-हानि का आकलन, कर न सके अनुराग।
भावों को आता नहीं, जोड़, गुणा, ऋण, भाग।।
अब इसी को सोरठा बनाते हैं:
कर न सके अनुराग, लाभ हानि का आकलन।
जोड़, गुणा, ऋण, भाग, भावों को आता नहीं।।

आशा है पाठक वृन्द सोरठे के रचना-विधान को समझ गए होंगे। अगले अङ्क में मिलते हैं एक और छन्द के रचना-विधान के साथ। तब तक के लिए अनन्त मंगल-कामनाएं।

विज्ञानी भी वैज्ञानिक है

डॉ. अशोक बत्रा
सेवानिवृत्त प्राचार्य, हिन्दू कालेज-रोहतक, कवि, भाषा और व्याकरण के विशेषज्ञ

आजकल 'विज्ञानी' और 'वैज्ञानिक' शब्दों की चर्चा बहुत जोरों पर है। कुछ विद्वानों का कहना है कि जैसे ज्ञान से ज्ञानी बनता है, वैसे विज्ञान से विज्ञानी बनना चाहिए, न कि वैज्ञानिक। उनका एक तर्क यह भी है कि जैसे समाज से सामाजिक और अर्थ से आर्थिक विशेषण शब्द बनता है, वैसे ही विज्ञान से वैज्ञानिक बनने वाला शब्द भी विशेषण है। अतः वैज्ञानिक शब्द साइंटिफिक के लिए तो ठीक है किंतु संज्ञा के रूप में इसका व्यवहार नहीं हो सकता। यह चर्चा लोगों को भ्रम में डाले हुए है।

जहाँ तक व्याकरणशास्त्र या भाषाविज्ञान की बात है, विज्ञान में एक प्रत्यय लगने के बाद जो वैज्ञानिक शब्द बनता है, वह विशेषण के रूप में तो बिल्कुल ठीक और मानक है।जैसे वैज्ञानिक दृष्टि,वैज्ञानिक चिंतन आदि।

साथ ही एक प्रत्यय लगने से संज्ञा शब्द भी बनते हैं। व्याकरण में इसका निषेध नहीं है। तंत्र से तांत्रिक, प्रश्न से प्राश्निक, पथ से पथिक आदि शब्द संज्ञा के रूप में प्रयुक्त होते हैं। अतः वैज्ञानिक का एक अर्थ विज्ञानविद या विज्ञान का ज्ञाता भी मानक है। अब प्रश्न यह शेष रह गया कि क्या वैज्ञानिक शब्द एक भूमिका में ही स्वीकार्य है या दोनों भूमिकाओं में?

यदि वैज्ञानिक शब्द के इस दोहरे अधिकार की बात की जाए तो यह उसका पूर्ण अधिकार है। भाषा इतनी विविधरूपा और बहुआयामी है कि इसमें एक शब्द की दो-तीन क्या अनेक-अनेक भूमिकाएँ हो सकती हैं। कल शब्द के चार-चार अर्थ हैं। आ उपसर्ग भी है और प्रत्यय भी। स्त्रीवाची शब्द बनाने के लिए अनेक संज्ञाओं के साथ दो-दो प्रत्यय मानक माने जाते हैं। जैसे बाल से बाला और बालिका। ऐसे में वैज्ञानिक शब्द की एकाधिक भूमिकाएँ क्यों नहीं हो सकतीं? मेरे मत में निश्चित रूप से हो सकती हैं। उसे संज्ञा और विशेषण दोनों रूपों में प्रयुक्त होने का पूरा अधिकार है। एक वाक्य देखिए - वैज्ञानिक जगदीश चंद्र बसु की दृष्टि अत्यंत वैज्ञानिक थी।

यहाँ एक प्रश्न और है कि क्या विज्ञान से विज्ञानी बना शब्द गलत है, अमानक है? नहीं; जिस प्रकार ज्ञान से ज्ञानी बना, विज्ञान से विज्ञानी भी एकदम शुद्ध और मानक है। कोई चाहे तो भाषाविज्ञानी, भूविज्ञानी, मौसमविज्ञानी, समाजविज्ञानी जैसे शब्द प्रयोग कर सकता है। स्वतंत्र रूप से विज्ञानविद के लिए विज्ञानी शब्द यद्यपि प्रचलित नहीं है, वैज्ञानिक शब्द ही हमारी जुबान पर चढ़ गया है किंतु यदि कोई विज्ञानी शब्द का व्यवहार करना चाहे तो उसका स्वागत होना चाहिए, उसे अमानक नहीं मानना चाहिए। अच्छा यही है कि दोनों मानक शब्दों को भाषा-प्रवाह में मुक्त छोड़ दें। समय का प्रवाह स्वयमेव किसी एक को या दोनों को विकल्प के साथ स्वीकार कर लेगा। आखिरकार, एक शब्द के अनेक पर्यायवाची भी पूरे भाईचारे के साथ जी ही रहे हैं। जब हर आदमी पिता, पुत्र, मौसा, फूफा, पति, देवर, जेठ - न जाने कितनी भूमिकाओं में एक साथ जी लेता है तो शब्दों पर इतनी पाबंदी क्यों?

आँखों की देखभाल

डॉ निखिल कौशिक
ब्रिटेन नेत्र विशेषज्ञ, और लघु वृत्त चित्रों के निर्माता।

आँखें सिर्फ़ आपकी ख़ूबसूरती को ही नहीं दर्शाती वरन ये आपकी स्वतंत्रता के लिए भी अति आवश्यक हैं ताकि आवश्यक कार्यों के लिए आपको किसी दूसरे पर आश्रित न होना पड़े। आँखें छोटे से दिये की रोशनी से लेकर सूर्य की चमक तक को देखने की क्षमता रखती है। आँखों की बनावट अद्भुत है और इससे कहीं अचंभे की बात यह है कि प्रकृति ने इनकी सुरक्षा का सम्पूर्ण प्रबंध किया है। पलकों से लेकर माथे की हड्डियों तक सभी अंग आँखों को सुरक्षित रखने में सहायक होते हैं।

समय व अनेक अन्य कारणों के चलते आँखों की कार्य-क्षमता पर अंतर पड़ता है; कुछ अंतर ऐसे होते हैं, जिनका व्यक्ति को तुरंत पता चल जाता है, जैसे आँखों में जलन, दर्द, और चोट लग जाने पर बनावट में अंतर।

अनेक कारण ऐसे होते हैं जिनकी देर तक कोई अलामत नहीं होती और धीरे-धीरे दृष्टि धूमिल होने लगती है - मोतियाबिन्द, ग्लौकोमा, रक्तचाप, मधुमेह, भिन्न प्रकार की रेटिनोपैथी (अंदरूनी रेटिना के विकार), बाल्यकाल में दृष्टि की कुछ कमियाँ (एम्बलिओपिया), इत्यादि। यूनाइटेड किंगडम में आँखों की नियमित देखरेख व उपचार के लिए सरकारें प्रबंध करती हैं, ऑप्टिशियन, नेत्र-विशेषज्ञ और आपातकालीन विभाग प्रमुख माध्यम हैं।

यह आवश्यक है कि समय रहते निदान के लिए आँखों की नियमित जांच करवाई जाए ताकि रोग को पहचाना जा सके और उसका उचित उपचार किया जा सके। याद रखिए कि इलाज से बचाव बेहतर है (प्रीवेन्शन इज़ बैटर दैन क्योर)

*5 साल की आयु से पहले बच्चों की नेत्र की जांच
*40 वर्ष तक किसी परेशानी के शक होने अथवा चोट लगने पर
*65 साल की उम्र तक हर दूसरे वर्ष आप्टिशन द्वारा चश्मे का नंबर
*65 साल से बड़े लोगों की हर साल नेत्र जांच

आज की दुनिया इतनी रोचक है और देखने-पढ़ने के लिए इतना सब कुछ उपलब्ध है कि बच्चे-बूढ़े सभी अपने किसी उपकरण पर नज़रें जमाए देखते रहते हैं, इनके दुष्प्रभावों के प्रति हमें सजग रहना होगा क्योंकि स्मार्टफ़ोन, कंप्यूटर्स, टैबलेट्स, टेलिविज़न आदि उपकरणों को निरंतर देखते रहने से माईग्रैन जैसी परेशानियां झेलनी पड़ सकती है। निम्न बातों का ध्यान रखें:

दृष्टि और धूप का चश्मा पहने
धूम्रपान न करें
अपने खानपान का ध्यान रखें

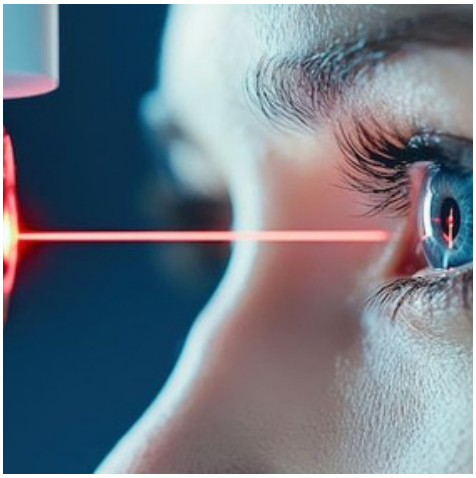

आँखों को खुश्क न होने दें
आँखों को मसलें नहीं
काम के संग संग आराम के महत्व को ध्यान में रखें, चैन की नींद सोएं
चश्मे के शीशों को साफ़ रखें

भारतीय उपमहाद्वीप के लोगों में मधुमेह एक बड़ी समस्या है। इसलिए यह आवश्यक है कि वे अपनी नियमित नेत्र-जांच करवाएँ ताकि समय पर किसी प्रकार के विकार और आँखों में होने वाले दुष्प्रभाव से बचाव व उचित उपचार हो सके। यह भी याद रखें कि नेत्रदान महादान है - हमारी आँखें हमारी मृत्यु के बाद भी किसी को दृष्टि देकर जीवित रह सकती हैं।

इतनी सी है ख्वाइश मेरी

अलका सिन्हा
प्रतिष्ठित लेखिका,
'पत्रिका' श्रृंखलाओं की
प्रस्तोता।

इतनी सी है ख्वाइश मेरी, इतनी-सी है आस
काश तुम्हारा दफ्तर होता घर के बिलकुल पास।

रटने को कुछ नए पहाड़े, कविताएं दे जातीं
और शाम को सुन लेतीं तो चाकलेट खूब खिलातीं
खेल-खेल में लिखना-पढ़ना आता कितना रास।
काश तुम्हारा दफ्तर होता घर के बिलकुल पास।

रोज लंच में चुपके-चुपके तुम घर को आ जातीं
खाना-पीना साथ में होता थपकी दे दुलरातीं
ऐसे में सब अच्छा लगता, बने साग या घास।
काश तुम्हारा दफ्तर होता घर के बिलकुल पास।

दफ्तर की बिल्डिंग से जब तुम झांका करतीं नीचे
मैं छुप जाता कहीं ओट में, अपनी अंखियां मींचे
तुम घबरा कर फोन मिलातीं, भर जाता उल्लास।
काश तुम्हारा दफ्तर होता घर के बिलकुल पास।

बड़ी देर तक घंटी बजती तब मैं फोन उठाता
धीरे-धीरे सहमे स्वर में, है बुखार बतलाता
तुम जल्दी से घर आ जातीं कर लेतीं विश्वास।
काश तुम्हारा दफ्तर होता घर के बिलकुल पास।

प्रकृति के पंख: स्मिता श्रीवास्तव

प्रो. सुरेन्द्र विक्रम
बाल साहित्यकार

बचपन में पढ़ी गई सुमित्रानंदन पंत की कविता – आः धरती कितना देती है - का अर्थ उस समय इतना ही समझ में आया था कि इसे पढ़कर परीक्षा पास करना है। धीरे-धीरे बदलते समय ने यह सिखा दिया कि पर्यावरण और प्रकृति का हमारे जीवन में कितना महत्त्व है। पर्यावरणविदों की लाख चेतावनी का असर हम पर नहीं हो रहा है। पहले सड़क के दोनों ओर छायादार वृक्षों के कारण हमारा पर्यावरण साफ़-सुथरा रहता था, पथिकों को ताज़ी हवा मिलती थी। प्रकृति और पर्यावरण की जानकारी बच्चों तथा किशोरों तक पहुँचाने के लिए शिक्षा के क्षेत्र में विगत दो दशकों से जुड़ी हुई रचनाकार स्मिता श्रीवास्तव ने 'प्रकृति के पंख' शीर्षक से अपनी 50 कविताओं को चुनकर ऐसा गुलदस्ता बनाया है, जिनकी महक से प्रकृति का कोना-कोना दमकने की क्षमता से भरपूर है; इसे उनका सुचिंतित प्रयास कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी -

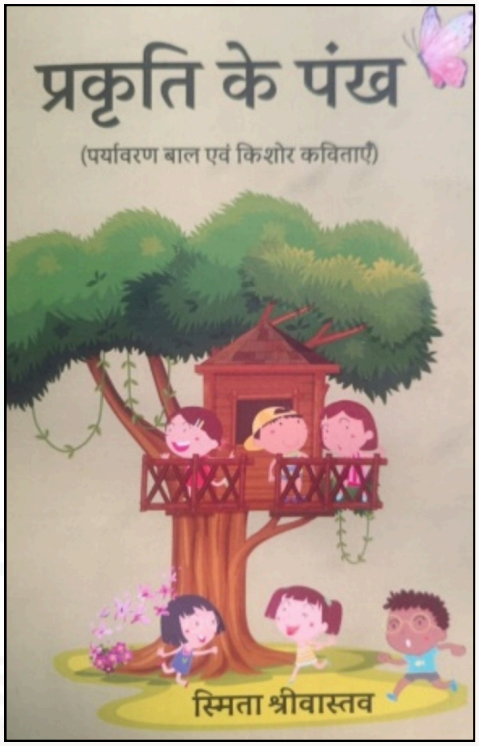

पेड़ भरपूर देता है
खेलकूद की जगह
छिपन-छिपाई की जगह
झूला झूलने की जगह
बारिश से बचने की जगह
देता शुद्ध हवा और ताज़गी बेहिसाब।

खदर-बदर कर भाग रही है, इधर-उधर से झांक रही है
मन मर्जी की मालिक जैसे, हम हों नौकर यही नवाब।
टीवी से सोफे पर भागी, ऊपर-नीचे दौड़ लगा दी
तुम क्या इससे जीत सकोगे, है हिम्मत तो भिड़ो जनाब।

महक सूंघकइन कविताओं में बच्चों को पेड़-पौधों, जल, हवा और जीव-जंतुओं के महत्त्व के बारे में बताया गया है - पेड़ लगाओ, धरती बचाओ, जल है जीवन, हमारी धरती - जैसी कविताओं के माध्यम से बच्चों में प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण का संदेश दिया गया है। ऐसी कविताएँ बच्चों को न केवल प्राकृतिक सौन्दर्य से जोड़ती हैं बल्कि उन्हें सच्ची मानवता का भी पाठ पढ़ाती हैं। पिछले दिनों एक नारा बड़ी तेज़ी से उभरकर सामने आया था जिसमें परिवार की धुरी माँ के नाम एक वृक्ष लगाने का संकल्प लिया गया था। स्मिता ने इसे माँ की ममता से जोड़कर कविता में इस प्रकार ढाला-

आओ लगाएँ एक पेड़ माँ के नाम।
माँ और प्रकृति का हो मान-सम्मान
वृक्षारोपण का हो नवीन एहसास
धैर्य, लगन, परिश्रम और संस्कार
माँ की सीख से सँवरता संसार

पर्यावरण को सुरक्षित रखने के लिए जगह-जगह हो रहे प्लास्टिक के विरोध को भी रचनाकार ने अपनी कविता का विषय बनाया है। रचनाकार की पेड़ों का आधार कार्ड बनवाने की कल्पना भी अद्भुत है। जिस प्रकार आधार कार्ड हमारी पहचान से जुड़ा हुआ है उसी प्रकार पेड़ों का आधार कार्ड बनना उन्हें अप्रत्यक्ष रूप से उनकी पहचान का द्योतक है। जगदीश चन्द्र बसु ने बहुत पहले कहा था कि पेड़ों में भी इंसान की तरह जीवन होता है। उनकी सभी क्रियाएँ मनुष्यों से मिलती-जुलती हैं, इसीलिए स्मिता की यह कविता हमें आगाह तो करती ही है, प्रकृति से साहचर्य बनने में भी कारगर होती है -

मैं भी तो जीवित हूँ
साँस लेता हूँ, देता हूँ प्राणवायु
जिससे बढ़े सभी की आयु
हम वृक्षों को भी मिले पूरा सम्मान
स्नेह-दुलार और अपनापन
विकसित होगा प्राकृतिक संतुलन
भीषण गरमी का प्रहार भी होगा कम।

जीवनदायिनी नदियाँ, सदाबहार ऋतुएँ, प्रदूषण मुक्त धरती के साथ लहलहाती फसल में प्रकृति और पर्यावरण का विशेष योगदान रहा है, जिसे स्मिता ने बारीकी से कविताओं में संजोया है। अध्यापन से जुड़े होने के कारण रचनाकार की दृष्टि में परिपक्वता के साथ-साथ गहन अनुभूति भी देखी जा सकती है। मुझे पूरा विश्वास है कि यह संग्रह पठनीयता के साथ-साथ प्रकृति और पर्यावरण के प्रति जागरूकता को भी बढ़ावा देगा।

तीन फ़्रांसीसी कवियों की रचनाओं के हिंदी अनुवाद

योजना रावत, पंजाब विश्वविद्यालय की डीन और सेंटर फॉर ऑनलाइन एंड डिस्टेंस लर्निंग में हिंदी की प्रोफेसर, लेखिका, आलोचक और अनुवादक हैं।

कलोद द बुरीन

फ़्रांसीसी कवयित्री कलोद द बुरीन की गणना सुप्रसिद्ध अति-यथार्थवादी कवियों में की जाती है। इनकी प्रसिद्ध काव्य कृतियाँ हैं: 'लेत्तर अ ला ओंफोंस', 'ल सोलई दों ला तेत्त', 'ल पास्सर','ल वोयाजर', 'ल पस्साजर', 'लाब्र ओ ज्वाजो' और 'ला सरवोंत'। इनकी कविताओं में प्रकृति और जीवन तथा मृत्यु के कई ख़ूबसूरत कोलाज उभरते हैं।

1. बिना छांव वाली डगर

एक बिना छांव वाली डगर होगी
अब मेरी ज़िंदगी
जहां मैंने एक बार कहा था – प्यार
जैसे धूप में फैली
एक चादर
मेरे अनुपस्थित सहयात्री के साथ
जीवंत से कहीं अधिक जीवंत
रास्ते संग मील पत्थर
एक अनजाने संसार की ओर
बिना पहचान और समय के
जहां शब्द फहराते
काले झंडे।

2. काले आदमी

वे आ गए हैं: मृत्यु के धावक
उनके माथे पर चमकते सितारे
उनकी कनपटी पर फैले नीले पंख
लाल धातु के उनके हृदय
हमें अपनी ही मौत मरना है
समय के दूसरे छोर पर
समय-असमय
मृत्यु को मारती मृत्यु।

3. खेल का मैदान

स्कूल का सूना खेल का मैदान
काली चेरी का फलदार वृक्ष
वापिस जगह पर रखी कापियां
मारा गया अंतिम पक्षी
द्वीप पर रुकी नाव
थम चुका संगीत

मैंने तुम्हारी प्रतीक्षा की
चाट गया
तुम्हारे पैरों के निशान तक
एक अपेक्षा था मैं
तुम्हारे कदम था मैं
मैं एक भूख था

तुम दोबारा नहीं लौटोगे
शायद तुम्हारी
प्रतीक्षा न करता मैं
लेकिन तुम्हारी प्रतीक्षा करूंगा मैं
जलती हुई भूख बनूंगा मैं।

4. हम

शायद किसी स्वप्न की तरह झूठे हैं हम
खुली आंखों मे
नींद में
अपने कंधे हिलाता डुलाता ईश्वर

इतनी दूर से आते हो तुम
रहते हो हमारे इतने पास
कि हम जी सकें
चांदनी रात में किनारे लगी
नाव हो तुम
जिसे लौटा लाते हम
जब अनुभव करता
सागर
प्रेम का

तुम्हारे साथ होने के लिए
पहले ही क्षण
पहले से ही याद करते कंकड़
जहाँ गुलबहार
एक बच्चे सी मस्त
नाचती सूरज तले

पेरिस में लैंप-पोस्ट
चिंतनशील आवारा लोगों से
टहलते अपनी छाया में
और नीचे
कहानी सुनाती एक चिड़िया

तुम्हारी चुप्पी: अचानक यह ठंड
मिलती : एक त्वरित सन्देश सी

5. नीली रोशनी के नीचे

बचपन की नीली रोशनी के नीचे
वहां
जहां लकड़ी के चमकते फर्श में बसी है
शहद व दूध की खुशबू

जहाँ कर्नेशियेस के फूल पी लेते
वनीला व काली मिर्च की खुशबू

तुम्हारी आवाज़
जैसे छूटती गाड़ी

पानी में उतरते जहाज़
नाव को साफ़ रास्ता देती
उभरे उदर वाली काली नावें
घोर काली
निर्वासित सी
विचरती बतखें
जब मोतियों से तीखे होते सरकंडे
हाथों के कोहरे के बीच

जब रात होती
रोशन होती नावें
तुम्हारी आवाज़ से
द्वीपों की ओर जातीं
और तुम
चले जाते
मुझे छोड़
तुम्हारी अनुपस्थिति से
सूनी हुई
आंखों के साथ

ज्यूल सुपरव्हील

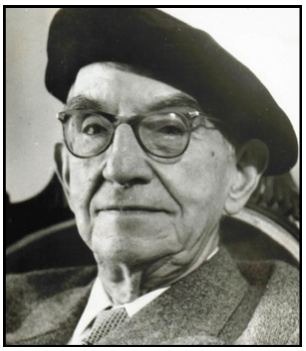

ज्यूल सुपरव्हील विख्यात फ्रांको-उर्गुवेन कवि, उपन्यासकार और नाटककार, जिन्होंने एक लंबा समय फ्रांस में बिताया। उन्होंने कविता में सर्रलिज्म-मूवमेंट का विरोध किया। 'ला फाब्ल दूयु मोंद', 'ल ओंफों द ला ओत मैर', 'ग्रावीतासिओं' उनकी प्रसिद्ध काव्य-कृतियाँ हैं। प्राणी जगत तथा प्रकृति से जुड़ी उनकी कविताएं सरल शैली व कोमल भावों के लिए जानी जाती हैं।

1. धरती

कांच का छोटा सा ग्लोब
धरती का छोटा सा ग्लोब
मेरी क्रिस्टल की खुबसूरत गेंद
मैं तुम्हारे पार देखता हूँ।

हम सब बंद हैं
तुम्हारी कठोर और गहन छाती के भीतर
बेहद चमकते
बेहद कांतिमय
रोशनी से घिरे हुए

कुछ: यह दौड़ता घोड़ा
एक रुकी हुई रस्सी
पूर्ण सुन्दरता लिए हुए फूल
अपने नक्षत्र पर एक बच्चा
कुछ और: टेबल के आसपास बैठे
या सिगरेट पीते
कुछ रेत पर लेटे
या आग में हाथ सेंकते
और स्वयं के आसपास चक्कर काटते
बिना किसी कोशिश
अकारण आकाश की तरह
इसके नक्षत्रों की तरह
मृत्यु के सामान चमकते हम।

2. प्रात: काल

मेरा मन आंगन के उस पार जाता है
जहाँ चिड़ियां चहचहा रही हैं
हल्की छाया से गुज़रती एक लड़की
लौट रही है अपने पुराने प्रेमी के पास
सुबह का निकला ऊपर लाया गया दूध
मन में आस जगाता
सीढियों के अंधेरे छल्लों में
तत्क्षणिक आश्वासन
सुबह की उल्लसित ध्वनियाँ
मेरी और बढ़ता एक दिन
न तेज़, न धीरे
नियति के अधीन कुछ कदम

मेरी तीस वर्ष पुरानी टांगें
चालीसवें की और बढ़ती हुई
न शर्म, न ही घृणा
रोकती इन्हें क्षण भर

मैं फिर उसी जगह खोज लूँगा
अपनी पुरानी और आज की हड्डियाँ
सजीव देह में
लिपटी रात में
मेरा हृदय भारी है
पीड़ा सहता हुआ।

3. मुसाफ़िर–मुसाफ़िर

मुसाफ़िर–मुसाफ़िर!
मान जाओ कि अब तुम्हें लौटना है
तुम्हारे लिए शेष नहीं
अब कोई नया चेहरा
अनेक दृश्यों के सांचों में ढला तुम्हारा सपना
इसे छोड़ दो इसकी नई परिधि में

लौट आओ चमकते क्षितिज से
जो कि तुम्हें अभी भी लुभाता है
अपने भीतर की जीवंत हलचल को सुनो
और सहेज लो
पाम वृक्षों की तीखी उजली हरियाली
जो तुम्हारी आत्मा के मूल तक घिर आई है।

4. यात्रा

नहीं जानता आज
कि इस पृथ्वी का क्या करूं
यूरोप की ऊँची चोटी का क्या करूं
क्या करूं ऑस्ट्रेलिया की समतल धरती का

कैलिफोर्निया का यह तूफ़ान
गंगा के पानी से निकला भीगा हुआ हाथी
मुझे भिगोता पर कुछ न सिखाता
एक हाथी की आँख
उर्जा के चरम पर पहुँचे हुए
एक समझदार आदमी की आँख का
सामना कैसे कर सकती है?
धरती पर हर तरफ़ दिखती इन औरतों का
क्या करूं?
धरती जो इन सबसे अधिक गोल है
औरतो!
वही करो जो तुम चाहती हो
जाओ! देर मत करो।

जाक प्रिवैर

अति-यथार्थवादी तथा बिंबवादी सुप्रसिद्ध फ्रांसीसी कवि जाक प्रिवैर स्क्रीन-राइटर, की कविताओं में प्रेम, भावुकता, सौंदर्य, आशा तथा सामाजिक सरोकार विशेष रूप से अभिव्यक्त हुए हैं। 'शब्द', 'रेन एंड गुड वेदर', 'स्टोरीज'', थिंग्स एंड अदरस,' 'ऑटम लीव्स', द हंट फॉर चाइल्ड' इनके प्रसिद्ध कविता संग्रह हैं।

1. अगस्त की दोपहर

एक युवा
खोयी सी
ठिठुरती,
भूख की मारी
निपट अकेली, निर्धन
सोलह बरस की लड़की
खड़ी निश्चल
कोंकोर्द चौराहा...
पेरिस
दोपहर,
पन्द्रह अगस्त।

2. नदी

चांदनी में चमकती तुम्हारी युवा छातियों पर
उसने फेंका है एक उदासीन पत्थर
ईर्ष्या का एक बर्फ़ीला पत्थर
गरमी की एक खूबसूरत ऋतु में
नदी पर नृत्य करती
तुम्हारी सुन्दरता की नग्न प्रतिध्वनि की ओर।

3. निर्बोध

वह सर हिलाकर न कहता है
पर मन ही मन हाँ कहता है
जो अच्छा लगे, उसे हाँ कहता है
अध्यापक को मगर न कहता है
वह खड़ा है वहां
प्रश्नों की बौछार में
अनेक समस्याओं से घिरा
अचानक हंस पड़ता है पागलों की तरह
फिर मिटा देता सब कुछ
अंक और शब्द
तिथियाँ और नाम
वाक्य और आकृतियाँ
अध्यापक की धमकी के बावजूद
मखौल उड़ाते बच्चों के बीच
हर रंग और हर साइज़ के चाक से
आंसुओं के काले ब्लैक बोर्ड पर
बनाता है वह
एक चेहरा
खुशी का।

4. बारबरा

याद करो बारबरा!
ब्रेस्त में तेज़ बारिश हो रही थी उस दिन
मुस्कराती चली जा रही थी तुम
ख़ुशी से चमकती
पूरी तरह से भीगी
याद करो बारबरा!
ब्रेस्त में तेज़ बारिश हो रही थी
मैं सियाम गली में
गुज़रा था तुम्हारे पास से
तुम मुस्करा रही थी
और मैं भी

याद करो बारबरा!
मैं तुम्हें नहीं जानता था
और तुम मुझे
याद करो
भूली तो नहीं
याद करो जब उसी दिन
पोर्च में खड़ा वह आदमी
तुम्हारा नाम पुकारा था उसने
और तुम बारिश में
भाग गयी थी उसकी तरफ़
ख़ुशी से चमकती
पूरी तरह से भीगी
उसकी बाँहों में जा सिमटी थी तुम

याद करो बारबरा
बुरा न मानना कि मैं तुम्हें 'तुम' कह रहा हूँ
जो मुझे प्यारे हैं
मैं उन्हें 'तुम' ही कहता हूँ
भले ही मैंने उन्हें देखा हो सिर्फ एक बार
अपनों के साथ औपचारिकता कैसी!
भले ही मैं नहीं जानता उन्हें

याद करो बारबरा!
तुम्हारे चेहरे पर पडती वह बारिश
उस सुंदर शहर में समुद्र पर
और बारूद के ढेर पर
नाव होती बारिश।

उफ़ बारबरा!
युद्ध की यह विभीषिका...
अब तुम कैसी हो?
हथियारों की मूसलाधार बारिश में
लोहाग्नि और रक्त की बारिश में
प्यार में आतुर वह
जिसने भर किया था तुम्हें बाँहों में
मृत है या लापता?

ओह बारबरा!
ब्रेस्त में कितनी बारिश हुई है
पर यह बारिश पहले जैसी नहीं
तबाह हो चुका है सब कुछ
भयानक विध्वंस और शोक की है यह बारिश
तूफ़ान भी पहले जैसा नहीं
यह तूफ़ान है लोहे, अग्नि और रक्त का
धीरे धीरे नीचे उतर रहे हैं बादल
गायब होते निर्जीव कुतों से
ब्रेस्त से बाहर नीचे की और उड़ते हुए
ब्रेस्त से दूर
बहुत दूर जाते हुए
जहाँ अब कुछ नहीं बचा...

‘नागार्जुन’ और ‘यात्री’

(30 जून 1911 – 5 नवंबर 1998)

आराधना झा श्रीवास्तव
पत्रकार, लेखिका और समीक्षक

हिंदी और मैथिली के प्रसिद्ध लेखक और कवि श्री वैद्यनाथ मिश्र जी ने ‘नागार्जुन’ उपनाम से राजभाषा हिंदी में प्रचुर लेखन किया और ‘यात्री’ उपनाम से मातृभाषा मैथिली में सृजनरत रहे। यात्री प्रकाशन, पटना द्वारा वर्ष 1968 में प्रकाशित उनके मैथिली काव्य-संग्रह ‘पत्रहीन नग्न गाछ’ को वर्ष 1969 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इसी काव्य-संग्रह से उनकी शीर्षक रचना और अन्य कविता प्रस्तुत है।

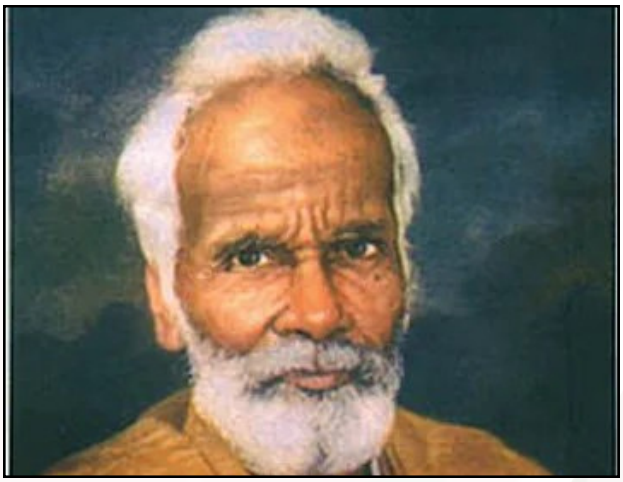

पत्रहीन नग्न गाछ

लगइए कारी बस कारी, ठुठाकृति
अन्हार गुज्ज रातिमे
स्पंदनहीन, रक्ष, तक्षक शिशिर
पसरल अछि सबतरि दूबिक मोलाएम नवांकुर
बाँटि रहल रोमांचक - टटका प्रसाद सउँसे शरीरकेँ
मोन होइए, गाबी अन्हरिओमेँ वसन्तक आगमनी
आउ हे ऋतुराज,
नुकाएल छी कालक कोखिमे अनेरे।
दिअउ निश्छल आशीर्वाद
तकइए अहींक बाट घासक पेंपी
आउ हे ऋतुराज

आजुक महाकारूणिक बुद्ध

छपबय छथि अपन वक्तव्य
अमेरिका-इंग्लैन्ड-फ्रांस-जापानमे
नय जानि, कत' कत' सँ अबय छन्हि भक्त-अनुरक्त
जाइत छन्हि चढ़ा नानाविध नैवेद्य!
आजुक महाकारूणिक बुद्ध
पहिरि लइ छथि कउखन कउखन
सए टाकावला जोड़ा चढ़उआ चप्पल
ओढ़ि लइ छथि कउखन कउखन
हजार टाकावला जोड़ा पश्मीना चद्दरि
पाबि लइ छथि कउखन कउखन
आस्ट्रेलियाक सेब, इस्त्राइलक अंगूर
आजुक महाकारूणिक बुद्ध
रहइ छथि सदिखन अपसिआँत
कुवेर लोकनिक हृदयकेँ द्रवित करबाक हेतु
अउनाएल घुरय छथि दिवारात्रि
कलकत्ता-मद्रास-बंबइ-दिल्ली
दिल्ली- बंबइ-मद्रास-कलकत्ता
आजुक महाकारूणिक बुद्ध
नय जानि, कहियाधरि पूर्ण हेतनि हिनक भिक्षापात्र!
साठिसँ बेसिए भ' गेलन्हि वयःक्रम
अहि रओ बा!.... कत' विश्वक कोन दोगमेँ
नुकाइलि छथि आजुक विशाखा मृगारमाता!
अपार वैभवक अधिस्वामिनी-
सहज द्रवणशीला, परम अनुरक्ता...
भेटथिन्ह कहिआ धरि हिनका सेठानी विशाखा ?
के कहओ, कहिआ, सिद्धिक प्रतापेँ
अमावास्याक निबिड़ निशीथमध्य
आप्लावित क' देथिन
निरंजना नदीक बलुआही पाट
आजुक महाकरूणिक बुद्ध!
भिक्षाटन? भिक्षाटन त हिनक महालीलाक
मामली अभिनय थीक शतांश मात्र!

आजुक महाकारूणिक बुद्ध
केलिफोर्नियाक देहातमेँ
खेने रहथि खीर गौरांगी सुजाताक हाथेँ
बुद्धत्व-प्राप्तिसँ' एक राति पूर्व!
तत्पश्चात् केने रहथि युगधर्म-चक्र-प्रवर्तन!
सउँसे सृष्टिमे, लागली पहुँचाबऽ
हिनक प्रवचनक एक एक आखर केँ
भारत भूमिक दोरस बसात....
जूमऽ लगलथिन नहू-नहू
सारिपुत्र, मौद्गल्यायन, महाकाश्यप....
छलथिन्ह आएल शरणमे हिनको
नगरवधू आम्रपाली....
अपन परित्यक्ता यशोधरापर
भेल छलन्हि अंकुरित हिनको हृदयमे
अपरिसीम करूणा...

साइन्सक पचफोड़नासँऽ छोंकल छन्हि
आजुक बुद्धक विवेक ओ संयम
शोधित छन्हि मैत्री भावना हिनक
अर्थशास्त्र-राजनीति आदिक पुटपाक सँऽ...
वियतनाम दिस केने पीठ,
तकय छथि तिब्बत दिस
आजुक महाकारूणिक बुद्ध!

◇.....◇

श्री कीर्तिनारायण मिश्र

(17 जुलाई 1937 – 4 जुलाई 2025)

हिंदी और मैथिली दोनों भाषाओं में साधिकार लेखन करने वाले साहित्यकार श्री कीर्तिनारायण मिश्र जी को 1997 में उनके मैथिली कविता संग्रह 'ध्वस्त होइत शांति स्तूप' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इस पुरस्कृत संग्रह से प्रस्तुत है उनकी शीर्षक कविता और एक दूसरी कविता जो उन्होंने बाबा नागार्जुन को उनके पचत्तरहवें जन्मदिन पर समर्पित किया था ।

ध्वस्त होइत शान्ति-स्तूप

एहि सैनिक कैंपमे
धियापुता केर एकटा किलकारी
पत्नी केर एकटा झलकी
माय-बापक एकटा चिट्ठी केर
की अर्थ होइत छैक,
अहाँ कैं बूझल अछि
आशाजी!

अहाँ तऽ 'प्लेज़र ट्रिप' पर जाफना
सुविधापूर्ण वाहनमे बैसि कए
सुरक्षित आवासक पहिनहिं व्यवस्था कए
सरकारी दायित्व छैक अहाँक जीवन-मरण
सैन्य-दलक ई दुर्लंघ्य प्रचीर लाँघि
केओ कोना करत हरण

अहाँ एतय रहि शान्ति-लीला देखू
आ संहारक आनन्द लिअऽ
हम छी छगुन्तामे
बुद्ध चलि गेला कतऽ
कतय छथि भूमिगत
संघमित्रा महेन्द्र
बौद्ध विहार भऽ गेल कोना
युद्धक केन्द्र

उघैत रहताह कहिया धरि
शान्ति-प्रिय सिंहली बन्धु
बारुदक बस्ता आ
तमिल धयने रहताह हिंसा केर रस्ता
रेडियो-सक्रिय-तरंगसँ उद्वेलित
एहि महासागरमे
शान्त जलबिन्दुवत्
'धम्मपद' अभिमंत्रित ई हीनयानी द्वीप
खाइत रहत कहिया धरि
दक्षिण अफ्रीकाक बेन
इसराइलक भार-डोर
अमरीकाक डाला
पाकिस्तानक भोग

अहाँकैं कैने अछि विस्मित
युद्धपोत पनिडुब्बी शस्त्रास्त्र
युद्धक विमान आ प्रक्षेपास्त्र
हमरा कैने अछि व्यथित-मथित
जातिभेद
माछ सभक पंच बनल 'शार्क-ह्वेल'
जल समाधि नेने धरिआर
ध्वस्त होइत शान्ति-स्तूप
शिखरासीन 'रडार'

इहागच्छ इहतिष्ठ

(महाकवि यात्रीक पचहत्तरिम जन्म दिवस पर)

एक नहि दू नहि
हजारक हजार
चढ़ैत रहैत अछि श्रद्धोष्ण धार
चानन-अक्षत आ फूल-बेल पात
पसरल रहैत अछि अपनेक चारुकात
होइत अछि भजन
कैल जाइत अछि आरती
जुड़ाइत रहैत छथि
बुभुक्षिता भारती

मुदा ई की
आवाहक लोकनिक
“इहागच्छ इहातिष्ठ”
सुनियो कैं
सम्मुख-सन्नद्ध नहि भऽ रहल छियैक अपने
कतय चल गेल छियैक प्राण-प्रतिष्ठाक एहि बेरमे

कहिया धरि पद्मासन लगौने
बैसल रहताह ऋत्विज
कहिया धरि होइत रहत
पूर्जा-अर्चा होम-जाप
कहिया धरि चुइत रहत
चुरुसँ शान्ति-जल

स्वस्तिवाचन आ षोड्शोपचारक एहिबेरमे
तऽ अपने कैं
पाथर भए सभ किछु ग्रहण करबाक चाही
पंचामृतसँ स्नान कए (!)
पत्र-पुष्प धूप-दीप, अर्घ्य-नैवेद्य
आ द्रव्यक मारि धरि
चुप रहि सहन करबाक चाही

की भेल जँ रोटी आ दवाइ पर
लागल रहल प्रश्न चिह्न सभ दिन
की भेल जे यात्रामे भेटैत रहल कष्टे-कष्ट
आइ देश
साहित्यक मुकुटमे मणि जकाँ जड़ि कए
आ फोटोमे मढ़ि कए
चढ़ा तऽ रहल अछि
एक-सँ-एक भव्य लेखमाला
कऽ तऽ रहल अछि सुकीर्ति गायन!
एहुना केओ रुष्ट भेल अछि
पूर्णाहुतिक एहि बेरमे
स्वीकार कऽ लेल जाय
ई आनुष्ठानिक प्रणति
प्रसन्न भए
देल जाउ
सभकैं सद्गति।

अन्तर्भाषिक सम्पर्क: एक विवेचन

पंडित गोविंद झा (10 अक्तूबर 1923 - 18 अक्तूबर 2023) भारतीय भाषाओं के विद्वान और शब्द का संधान करने वाले मैथिली के एकमात्र साहित्यकार थे जिन्हें एक ही वर्ष 1993 में उनके मैथिली कहानी संग्रह 'सामाक पौती' के लिए साहित्य अकादमी का मूल पुरस्कार और उनकी पुस्तक 'नेपाली साहित्यक इतिहास' के लिए साहित्य अकादमी का अनुवाद पुरस्कार प्राप्त हुआ। नवारम्भ प्रकाशक द्वारा प्रकाशित उनके निबन्ध संकलन - अनुचिन्तन (विविध निबन्ध) से प्रस्तुत है उनका लिखा एक निबन्ध।

भाषा अनादि कालसँ टूटैत, एकसँ अनेक होइत आएल अछि। कल्पना करू, सुदूर अतीतमे कोनो एक ठाम एक गोत्रक लोक एक परिवार जकाँ रहैत छल। गोत्रमे जनसंख्या बढ़ैत गेल, ओकर विभिन्न शाखा-प्रशाखा विभिन्न उर्वरक्षेत्रमे जाए-जाए बसैत गेल। एक शाखाक सम्पर्क दोसर शाखासँ टूटैत गेल, सभ शाखाक भाषाक विकास भिन्न-भिन्न तरहेँ होइत गेल आ' अन्तत: ओहि गोत्रक एक मूल भाषा अनेक होइत गेल। एहिना एक समय सगर उत्तराखंडमे आर्यजातिक एक भाषा छल। आइ से विभाजित होइत-होइत ततेक अधिक भए गेल अछि जे गनबो कठिन।

भाषाक एना विखंडित होएबाक मूल कारण छल एक जनपदकेँ दोसर जनपदसँ दूरत्वक कारणेँ सम्पर्कक अभाव। आइ हमरा लोकनि सम्पर्कक परम सुविधा बाला युगमे पहुँचि गेल छी। आश्चर्य जे तैओ हमरा लोकनि भाषाकेँ तोड़नहि जाए रहल छी। विचारणीय अछि जे की एहि प्रकारक विखंडन-विभाजन भाषिक समाजक हेतु हितकर थिक? यदि नहि तँ एकरा कोना रोकल जाए? इहो विचारणीय अछि जे टुकड़ी-टुकड़ी भेल भाषाकेँ जोड़ब सम्भव आ' वांछनीय अछि कि नहि?

भाषा-विखण्डनक कारण अतीतमे जे रहल हो वर्तमानमे हमरा जनैत किछु नब-नब कारण उपस्थित भेल अछि वा उपस्थित कए देल गेल अछि। एहि प्रसंग नेपाली भाषाक एक प्रख्यात कवि विजय मल्लक एक कविता देखल जाए –

छोरी लाई मानचित्र पढ़ाउंदा:
रातो रगतले कोरिएको साँध
खेतमा डील लाए झैं
हेर हरेक राष्ट्रको फटमा
यो हो भारत यो हो पाकिस्तानजता हेर
रातो रगत ले लाएको छ घेरा
परेबा लाई गंजकमा बन्दगरे झैं
मानिस छन् बन्दी यस खोरमा

कवि बेटीकेँ भूगोलक नकसा पढ़बैत छथि। लाल रक्तसँ डाँरि पारि-पारि रचल ई नकसा प्राकृतिक नहि, शुद्ध राजनैतिक, मानव-रचित थिक। देश-देशक सीमा रक्तपातसँ अंकित भेल अछि, जेना भारत आ' पाकिस्तानक सीमा। एहि लाल रक्तसँ बनल खोपमे मानव बन्द अछि परबा जकाँ।

एहिमे वर्णित अछि भौगौलिक विखंडन, परन्तु भाषा तकरो विखंडन एहिना मानवकृत थिक। प्रत्येक भाषा लाल रेखासँ छेकल अछि। भारतमे पहिल बेर ई लाल रेखा पाड़लनि ग्रिअर्सन साहेब। भाषाधार राज्य बनल तँ ई रेखा पाथरक देबाल भए गेल। ततबे नहि, कानून बनाए-बनाए पड़ोसक भाषाकेँ अछोप घोषित कए मानू मुँह पर लगाम लगाए देल गेल। एहि तरहेँ आरि-धूर बन्हाए गेला पर एक खोपक लोककेँ दोसर खोपक भाषासँ कोनो मतलब, कोनो सम्पर्क नहि रहि गेलैक। सम्पर्कक आवश्यकता भेला पर एक टा तेसर भाषा मानि लिअ हिन्दी दुनूक बीचमे ठाढ़ भए जाएत।

ई तेसर भाषा, जकरा प्रतिष्ठित नाम देल गेल अछि सम्पर्कभाषा, मुदा हमरा जनैत सम्पर्कभंजक भाषा थिक। कल्पना करू, देशमे हिन्दी आ' अङरेजी भाषा नहि अछि। एहन स्थितिमे एक बंगाली आ' एक मैथिलक बीच गप होएत तँ मैथिल मैथिली बाजत, बंगाली बंगला। एहि प्रकारेँ सम्पर्क बढ़ैत जाएत। एक भाषा दोसर भाषासँ प्रभावित होइत जाएत, दूरी घटैत जाएत आ' आश्चर्य नहि जे सुदूर भविष्यमे दूनू मिलि एक भए जाए। जहिना एक दिन सम्पर्कक अभावेँ दूनूक बीच विश्लेष भेल छलैक तहिना सम्पर्कसाधनक विकासक फलस्वरूप दूनूक बीच संश्लेष भए जएतैक। परन्तु आइ एक टा तेसर भाषा उपरसँ आबि बीचमे ठाढ़ भए दूनू भाषाक बीच साक्षात् सम्पर्क नहि होअए दैत अछि। तहिँ एहन तथाकथित सम्पर्कभाषाकेँ हम सम्पर्कभंजकभाषा कहल। मानल जे तथाकथित सम्पर्क भाषा व्यापक क्षेत्रसँ वा विश्व भरिसँ जोड़ैत अछि। हिंदी लगभग सम्पूर्ण भारत आ' पाकिस्तानसँ जोड़ि सकैत अछि आ' अङरेजी लगभग सम्पूर्ण विश्वसँ। परन्तु पड़ोसी भाषासँ जे प्रत्यक्ष सम्पर्क खूब सम्भव अछि, ताहिमे ई दूनू बाधक होइत अछि। एहिना दीर्घकाल धरि प्रत्यक्ष सम्पर्कसँ जे दू पड़ोसी सगोत्र भाषाक बीच एकात्मता वा समेकनक सम्भावना बनैत अछि ताहूमे ई दूनू बाधा करैत अछि। हमरा जनैत तेसर भाषाक अवलम्बन ततहि कएल जाए जतए दूनू भाषा भिन्न-भिन्न गोत्रक हो, जेना मैथिली आ' तमिल, बंगला आ' जापानी।

जेना सम्पर्कभाषा प्रत्यक्ष सम्पर्क तोड़ैत अछि तहिना अनुवाद सेहो। जखन हिन्दी जननिहारकेँ पंजाबीक उत्कृष्ट साहित्य अनुवाद द्वारा हिन्दिअहिमे भेटि जाइत छनि तखन ओ पंजानी किएक पढ़ताह। बन्द रहओ पंजाबी अपन रक्तरेखाक भीतर। आओर ओहि हिन्दी जननिहारकेँ दृढ़ धारणा छनि जे पंजाबी हुनका बुझबामे नहि अओतनि। एहि धारणाक कारणेँ ओ कहियो पंजाबी पोथी प्राय: छूबे नहि कएलनि। नहि छूबाक एक कारण भेल होएतनि गुरमुखी अक्षर नहि जानब। हमर धारणा अछि जे जँ आजुक प्रचलित पंजाबी भाषाक कोनो सामान्य व्यावहारिक गद्य नागरीमे लिखि हिन्दीविद्केँ देल जाइन तँ बुझबामे बाधा नहि होएतनि। आरम्भमे नब भाषा पढ़बामे किछु कष्ट अवश्य होइछ किन्तु क्रमश: ओ कष्ट दूर होइत जाइछ। परन्तु जखन कोनो हिन्दी जननिहारसँ कोनो पंजाबी बन्धु बतिआए लगताह तँ पंजाबी बदला हिन्दी धए लेताह मानू ओ अपन भाषा पंजाबीकेँ रक्तरेखासँ बाहर वा बिरादरीसँ बाहर नहि जाए देअए चाहैत होथि।

लिपिभेद सेहो बड़का सम्पर्कभंजक भए जाइत अछि। परन्तु एकरा दूर करब हमरा जनैत बड़ सोझ अछि। बहुतो विद्वान चाहैत छथि जे समस्त भारतक वा कमसँ कम उत्तर भारतक सभ भाषाक लिपि नागरी होअओ। एहि पक्षमे बहुत तर्क अछि जकर बखान एतए अप्रासंगिक होएत। दोसर उपाय अछि जे अपन-अपन लाल रेखाक भीतर अपन-अपन लिपिकेँ सभ धएने डरहथु, एकरा संगहि, पड़ोसक आनो लिपि सीखि लेथु। से सीखब सोझ छैक किएक तँ जेना चारू भाषा एके गोत्रक थिक तहिना चारू लिपि सेहो। एक उपाय आओर अछि। जँ अपन साहित्यकेँ केओ चाहथि जे लाल रेखाक बाहर जाए तँ ओ अपन रचना अपन लिपिमे छपएबाक संग-संग पड़ोसी लिपिमे सेहो छपाओल करथु। उर्दूमे ई काज खूब भए रहल अछि। कम्प्यूटर क्लिक करितहिँ लिपिपरिवर्तन कए सकैत अछि; तैँ दू लिपिमे छपाएब आब बड़ सोझ भए गेल अछि।

सम्प्रति लाल रेख टपएबाक काज अनुवाद द्वारा होइत अछि। एक तँ ई काज कठिन अछि, दोसर कहबी अछि जे अनुवाद एक प्रकारक केरिकेचर थिक। हम जखन-जखन कोनो पुस्तकक अनुवाद पढ़ैत छी तँ एक गीत मन पड़ि जाइत अछि – तसवीर तेरी दिल मेरा बहला न सकेगी। एक बात आओर। उर्दूमे लिखल अछि – एक लड़का जाता है आ' तकर अनुवाद करैत छी एक लड़का जाता है। एकरा अनुवाद कहबैक कि लिप्यन्तरण? तात्पर्य ई जे जँ लिप्यन्तरणहिसँ काज चलि जाए तँ अनुवाद व्यर्थ थिक।

भारत सरकारक साहित्य अकादेमी करोड़क करोड़ टाका अनुवाद पर खर्च कए रहल अछि। ओ जँ किछुओ पुस्तकक अनुवादक बदला लिप्यन्तरण प्रकाशित करए तँ भाषिक एकात्मताकेँ बहुत बल भेटतैक। ज्ञातव्य जे लखनौक एक प्रतिष्ठित सहित्यिक संस्था 'भुवनवाणी' ग्रीक, हिब्रू, अङरेजी, तमिल, बंगला, पंजाबी इत्यादि विश्वक विभिन्न भाषाक शतश: ग्रन्थ सभ देवनागरी लिपिमे प्रकाशित करैत आएल अछि। ओकर लक्ष्य छैक जे नागरी भुवन भरिक सभ वाणीक वाहिनी बनए। भुवन तँ बहुत पैघ भेल, कमसँ कम उत्तर भारतक प्रमुख भाषा सभक वाहिनी तँ सुविधापूर्वक भए सकैत अछि। एहि दिशामे सभसँ पहिने लगभग सए वर्ष पूर्व अग्रसर भेल रहथि एक बंगाली विद्वान सारदाचरण सेन। लिपिक एकीकरण आन्तर्भाषिक सम्पर्कक प्रथम चरण होएत।

जेना विश्वभाषा बनबाक लेल अङरेजी उताहुल अछि तहिना रोमन लिपि फोनेटिक बाना बनाए संसारक सभ भाषाक लिपि बनबाक हेतु कटिबद्ध अछि। ई-मेल, फोन पर एसएमएस इत्यादि कतोक क्षेत्रमे ई ढुकि चुकल अछि। मैथिलीक एक शब्दकोश सेहो एहि फोनेटिक रोमन लिपिमे इंटरनेटपर आबि चुकल अछि। एकर विश्वविजय एखन बहुत दूर अछि। सम्प्रति पड़ोसी भाषासभक बीच सम्पर्क बढ़एबाक लेल देसी माल नागरी सेह उपयुक्त होएत।

हम ई आलेख प्रतिक्रिया जनबा हेतु एक मित्रकेँ सुनओलिअनि। हुनक उत्तर छल, 'बताह भेलह अछि की?' उनटा गंगा बहबए चाहैत छह। तोहर अपन भाषा जे खंड-पखंड भेल जाए रहल छहु, तकर चिन्ता करह। दुनिआ भरिक भाषाकेँ एक करबाक चिन्ता विश्वक महाशक्ति सभ पर छाड़ि दहुन। हम उदास भए आओर गहनतासँ सोचए लगलहुँ, के कएलक मैथिली आ' मगहीकेँ दू फाँक? के कएलक असमिया आ' बंगलाकेँ, हिन्दी आ' पंजाबीकेँ दू-दू फाँक? फेर मन पड़ल ओ रातो रगत केर बात।भाषाक विभाजनमे मुख्य भूमिका तँ राजमतक रहैत अछि, संगहि जनमत आ' विज्ञमतहुक अपन-अपन भूमिका छैक।राजा अपन सुविधा देखैत अछि, जनता अपन उत्कर्षभावन आ' विज्ञजन अपन तर्क। उदाहरणार्थ बिहार लेल जाए। बिहारक जनता अपन भाषा मगही, मैथिली आ' भोजपुरी कहैत अछि। विज्ञजन (भारतीय भाषा सर्वेक्षणमे) बिहारक एहि तीनू भाषाकेँ समेटि बिहारी नामक एक भाषा ठाढ़ करैत अछि। राजा एहि तीनूकेँ छाड़ि हिन्दीकेँ बिहारक भाषा बुझैत अछि। एक खीरा तीन फाँक, सेहो तीनू सरकारक घरमे अछोप। महात्मा गान्धीक प्रतापेँ लोकक अछूतोद्धार भए गेल किन्तु भाषामे छुआछुत रहिए गेल। दलित वर्गक हाथमे भोट छैत तँ ओ मथा चढ़ाओल गेल। मुदा ओकर बोली? ओकर भाषा हाथमे से भोट नहि छैक तेँ ओ सहज मृत्युक बाट पर छाड़ि देल गेल अछि। तैओ भोजपुरी अपन लोकरिझाओन बलपर जिबैत अछि तैँ मैथिली साहित्यसर्जनक बल पर।

ठीके कहलक मित्र। भोजपुरी भाग्यवान् अछि, बंगला भाग्यवान्। केवल मैथिली टूटबाक संकटमे पड़ल अछि। एक समय बंगाल सहित सम्पूर्ण मगधमे एक भाषा मागधी छल। राजनीति एकरा दू खंड कएलक। पूबमे बंगला भए गेल। पश्चिममे मागधी रहल। 13म शतकमे आबि गंगाक उत्तर मिथिलामे हिन्दूक स्थानीय

शासन स्थापित भेल आ' तकर छत्रच्छायामे प्राचीन भारतीय विद्याक संग समकालीन भाषामे साहित्यसर्जन होइत रहल। आओर पछाति ई उतरबारि मागधी मैथिली कहबए लागल। ओम्हर गंगाक दक्षिण मगधमे स्थानीय शासन सोझे मुसलमानक हाथमे रहल तैँ केवल फारसी आ' उर्दूकेँ बल भेटलैक, स्थानीय भाषा मागधीसँ मगही अर्थात् मगहक गमार बोली भए जिबैत रहल। मैथिली पर प्राचीन परम्परा आ' पांडित्यक रंग चढ़ैत गेल जाहि कारणेँ मैथिली आ ' मगहीक बीच बाहरसँ भिन्नताक आभास आबि गेल। ग्रिअर्सन साहेब एहि आभासिक भिन्नता पर मोहर लगाए देलनि, यद्यपि सुनीति कुमार चटर्जी शुद्ध भाषिक दृष्टिएँ दूनूकेँ एक मानलनि। हालमे मगही आ' मैथिली दूनूक घरमे फुटौअलि खूब तेज भए गेल अछि। नगपुरिया, सदानी आदि नामसँ मगहीक विखंडन चलल तैँ अंगिका, बज्जिका, थरुहट आदि नामेँ मैथिली। एहि सभ नब-पुरान भाषाक बीच केतक प्रतिशत समता छैक, कतेक प्रतिशत परस्पर बोधगम्यता छैक से देखनिहार केओ नहि। सभक आँखि फुटौअलि पर; मिलओनिहार केओ नहि। जानि नहि, एहि फुटौअलिक अन्त कतए जाए होएत।

केओ सहमत हो वा नहि हम तँ जोर दए कहब जे जँ सभ प्रकारक चिरसंचित दृढ़बद्ध धारणा आ' भाषेतर भावनाकेँ हृदयसँ हटाए शुद्ध भाषिक दृष्टिएँ देखल जाए तँ एक टा अद्भुत भाषा अन्त:करणमे देखि पड़त जे नेपालक धनकुट्टासँ उड़ीसाक सुन्दरगढ़ लग धरि आओर बंगालक मालदहसँ बिहारक औरंगाबाद धरि पसरल भेटत। एकरा ने मैथिली कहबैक ने मगही। एकर एकमात्र उपयुक्त नाम होएत मागधी किएक तँ एकर केन्द्रबिन्दु थिक मगधक राजधानी पाटलिपुत्र। इतिहास सेहो सेह कहैत अछि। मैथिली, मगही, सदानी इत्यादि सभ एकरे विभाषा सभ थिक। एहि सभकेँ एक भाषा बनबैत अछि परम जटिल आ' विचित्र क्रियापद-प्रणाली जे भारतक आन कोनहु भाषामे नहि पाओल जाइत अछि। एक अन्य उल्लेखनीय समानता अछि उपान्त्यपूर्व-लघुता। एकताक दोसर सूत्र अछि लगभग शतप्रतिशत परस्पर बोधगम्यता।

स्पष्ट कए दी जे परम सदृश दू वा अनेक भाषाकेँ एकमे मिलाएब हम काम्य बुझैत छी, किन्तु साध्य नहि। साध्य एतबे बुझैत छी जे पड़ोसी भाषाक बीच अधिकाधिक प्रत्यक्ष सम्पर्क होइत रहए। दोसर कामना ई अछि जे भाषाक विभाजन आ' सीमांकन भाषाशास्त्रक आधार पर प्रतिशत साम्य आ' वैषम्यक आकलन कराए कएल जाए। एखन धरि ई काज त्रिपक्षीय मत पर होइत आएल अछि: विज्ञमत, जनमत आ' राजमत। राजा जनमतक आगाँ झुकैत छथि आ' विज्ञमतक उपेक्षा करैत छथि, एही कारणेँ फुटौअलि बढ़ि रहल अछि आ' अन्तर्भाषिक सम्पर्क घटि रहल अछि। उदाहरण लेल जाए। विज्ञमत (ग्रिअर्सन साहेबक मत) कहैत अछि जे बिहारक जनभाषा बिहारी (मैथिली+ मगही+ भोजपुरी) थिक; किन्तु राजमत कहैत अछि जे एहि राज्यक भाषा हिन्दी-उर्दू थिक।

शुभ समाचार अछि जे भारत सरकार देश भरिमे भाषा-सर्वेक्षण कराए रहल अछि। हमर अनुमान अछि जे एहिसँ बहुत विस्मयजनक भाषिक मानचित्र बहराएल – ओहि मानचित्रसँ भिन्न जे रातो रगत ले लाएको छ।

Artist-Author of the Month: Asghar Wajahat

The Hindi scholar, fiction writer, novelist, playwright, an independent documentary filmmaker, painter and a television scriptwriter Syed Asghar Wajahat, popularly known as Asghar Wajahat was born 5 July 1946 in the city of Fatehpur (Uttar Pradesh). He completed his PhD in 1974 from Aligarh Muslim University, Post Doctoral Research from Jawaharlal Nehru University. He has published five collections of short stories, six collections of plays and street plays, and four novels. He is most known for his work, 'Saat Aasmaan' and his acclaimed play, 'Jis Lahore Nai Dekhya, O Jamyai Nai'. He has also written film scripts and conducted workshops on screen writing. His work has been translated to many Indian and foreign languages.

Asgar Wajahat also regularly writes for various newspapers and magazines. He was guest Editor of BBCHindi.com for three months in 2007. He has also been associated with reputed Hindi literary magazines like Hans and Vartaman Sahitya as guest editor. He has also been involved in Hindi cinema as a scriptwriter since 1975. He has worked on a film script for filmmaker Rajkumar Santoshi. He himself has made few documentary films including a 20-minute on the development of Urdu Ghazal.

Asgar Wajahat has been honoured by several literary organisations for his contribution to Hindi literature. He was awarded the Vyas Samman for his play ‘Mahabali’. Presently, he is Professor of Hindi, Jamia Millia Islamia. He was also the officiating director, A.J. Kidwai Mass Communication Research Centre at Jamia Millia Islamia, Delhi.

Rajiv Mudgal's 'The Loom of Time'
A Tapestry of Time, Memory, and the Human Soul

Shaily Mudgal
Voice Actor, Critic and Translator

The novel 'The Loom of Time' is a fiction-of-ideas that asks readers to think with it, not merely follow it. Treating ambiguity as method, it slips between autobiography and invention, reportage and metaphysics, fable and memo. Rather than a single plot, it builds a tapestry in which stories, arguments, and afterimages interweave—the pattern visible at a distance, the texture felt line by line.

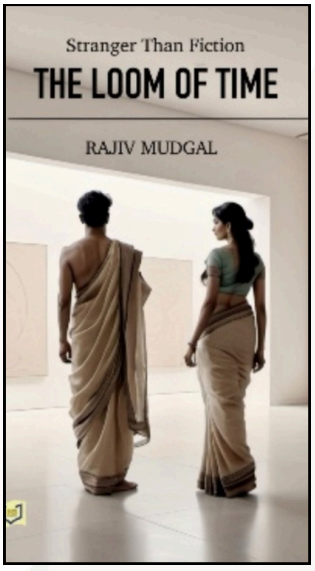

The frame is elegant and disarming. In their new Bandra East flat, the narrator, Sunder, and his wife, Shobhana, discover a worn leather diary and a thin magazine: undated recollections paired with an intellectual provocation. They present the find with minimal interference, turning reading itself into a plot as an editorial conscience arranges fragments. Curation becomes an ethic—how to inherit broken things, accept their limits, and still make them speak. The meta-narrative mirrors the novel's larger concern: attention as responsibility.

The titular story supplies the master metaphor. An "unimportant" journalist—self-scornful yet oddly trustworthy—travels to Moscow carrying secondhand utopias of collectivist modernity. On the plane, a young woman's clarity recasts authority as disciplined hospitality to uncertainty rather than brittle dogma. In Moscow his illusions meet the grain of lived collectivism; in a hidden library he finds an ornate apparatus—part press, part loom—called the loom of time. Fed by human thought and action, it weaves a living tapestry of history: tug a thread and lives unravel; mend a fray and the world holds. Apprenticeship becomes an ethic—learn the pattern, find weak strands, strengthen what bears, and, when needed, change the weave.

The loom is moral pressure, not clever décor. History is fabric we collectively produce. Its keepers are craftspeople rather than gurus—severe when needed, tender when possible, alive to consequences. The journalist's willingness to be "useless" until he learns to be of use gives the book its pulse of sincerity.

"The Boatman" extends the inquiry through a surreal, posthumous argument with the legend of Lu Xun. Waking inside the mausoleum of his own fame, he is ferried across a misted river by a boatman who seems to

carry censored authors and silenced witnesses. Their dialogue audits revolutions that devour their children, tyrannies that wear the mask of deliverance, and the hazards of turning art into a purity test. Returning as Vaman, the figure embraces human-scale politics: not purifying erasures but the slow labours of voice, theatre, poetry, and companionship—where love and loss both educate. The chapter rejects fantasies of total renewal and chooses reparative cycles of beginning again.

"The Ghost" is the most unsettling and intimate. The narrator's exchanges with Aruni—lover, intellectual equal, and eventually an absence—turn on time and memory: Can remembrance travel backward or sideways? Can recognition be planted in the future? Private speculation is threaded with public unease as the book weighs "evolutionary intelligence" against technological acceleration and warns against systems that outsource conscience. A story within a lecture within the story (Bhimsen and Mani) mirrors the novel's layered architecture. Coincidences accumulate; mourning shades into haunting. The horror is ethical rather than spectral: grief as knowledge, love as a laboratory for metaphysics, the past refusing to stay politely past.

"In the River Bed She Dreams," the culminating movement, is the most conversational. Back in Mumbai after years away, the narrator's reunion with Kanak becomes a walk-and-talk on art, quantum imaginaries, and experience's refusal of total explanation. The ballast is real—śūnyatā and tathatā, the observer's role in bringing phenomena to presence—but the register stays human. Art is not ornament but ritual: a way to let being emerge and shine forth. An appendix on J. Krishnamurti's "failure as master" sharpens the point: systems can console and also incarcerate. What matters is lucid attention, courage in not-knowing, and the will to act.

Mudgal's craft matches his ambition. The prose moves between lucidity and lyric without losing precision. Nested structures are never mere cleverness; they fit a world that resists single answers. What keeps the book alive are lived stakes: love that withers or endures, institutions that harm or heal, choices that mend or fray the common fabric.

At its core, The Loom of Time argues against fatalism disguised as realism. Time is not a conveyor belt that drags us along; it is a loom that responds to touch. The novel does not pretend anyone can reweave the world at will; it insists on repair where we stand. That is politics: a refusal of authoritarian certainties and passive despair, and a preference for small, sustained acts that accumulate into a pattern one can inhabit with dignity. In a culture saturated with op-ed certitude and algorithmic impatience, such patience feels radical. Read this way, the book's design and ethic echo Naṭarāja: a disciplined, dynamic intelligence that treads down egoic certitude and linear-time fatalism, opening a space of release through attentive, reparative

action. Not spectacle but craft: the loom for the dance, repair for cataclysm—yet the choreography holds: trample authoritarian ignorance and the ego of linear time, and release a freedom answerable to care.

Finally, the book quietly reclaims the Indian frame-tale lineage—Kadambari's story-within-story intelligence—over the linear psychological arc popularised by the Western realist novel from Tolstoy's Anna Karenina to Dostoevsky's Crime and Punishment. Rather than fastening attention to one protagonist's interiority, Mudgal layers narrators, nests tales inside lectures and diaries, and lets motifs refract across frames. The result is not antiquarian pastiche but a contemporary re-engineering of an ancient form: supple, polyphonic, and truer to a world experienced as interdependence and recursion. On those terms, the experiment holds: the frame is alive, the insets purposeful, and the weave persuades. The book becomes both tapestry and manual—an apprenticeship in attention, responsibility, and repair, inviting us to keep watching, keep mending, and keep faith with a pattern large enough for our errors and small enough to be changed by our hands.

Banu Mustaq's Heart Lamp: Selected Stories

Mallika Ramachandran
Independent Legal Researcher and Freelance Editor

This collection of twelve quietly powerful stories by Banu Mushtaq, author, activist, and lawyer, explores the social and power dynamics and culture of the everyday lives of Muslim communities in Karnataka. Translated by Deepa Bhashti and the winner of the 2025 International Booker Award, a large number of these stories focus on women's lack of agency and even personhood. They are reduced to wives who are simply to 'obey' their husbands' every word; bear innumerable children with little consideration of their own health (after all, it's the husband who's bearing the cost).

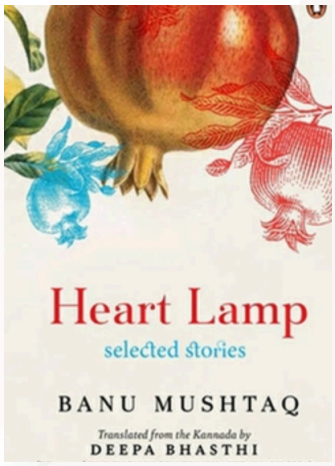

They can't even protest when their husbands decide to leave them because they have borne only girls (Black Cobras) or lost their attraction (Heart Lamp) or become ill (Be a Woman, Once, O Lord). The men, on the other hand, are free to do as they please, with no accountability or responsibility.

Isn't he a man? Whether he is there, not there, whether he carries responsibilities, whether he neglects them, who's going to ask? Who does he have to answer to? (Black Cobra)

Many of the women in these stories come from poorer segments of society and have little hope of justice, not even from doyens of society like the Mutawalli (Black Cobras). There are others from more educated sections, whose husbands claim to love them dearly but are quick to move on when tragedy strikes, not sparing even a moment for mourning or grief (Stone Slabs for Shaista Mahal). The poorer sections aren't always left without voice, standing up in ways that at least bring home the guilt to some, tragedy sometimes providing the strength to take a decisive step (Black Cobras).

Lack of agency is also explored in another very different story, where a young man becomes obsessed with his sister-in-law's dainty high-heeled shoes, and forces such a pair on his wife's feet with not a thought to whether they are suited for her and how she might manage them on a public street (High-heeled Shoe).

Another obsession is of a young teacher of Arabic whose strange love for Gobi Manchurian has both amusing and more serious consequences (The Arabic Teacher and Gobi Manchuria).

Not confined to vulnerable women alone, these stories also look at some harried men. Akhila (A Decision of the Heart) is an otherwise good woman

whose unreasonable jealousy of her mother-in-law prompts her husband to take a surprising decision; and the wealthy Shaziya (The Shroud) whose love for shopping, even while on Hajj, not only causes her husband much consternation but also leads her to break a promise only to have it come back to cause her guilt and grief.

Class dynamics are considered (Red Lungi) where the wealthy family of Razia does its duty by the less fortunate in their community but the differences in how things are done for those with means and those without stand out sharply. Other moods and emotions like humour (A Taste of Heaven) and childhood memories (Soft Whispers) are also explored in the collection.

The world brought to life in these stories is peopled by an assortment of characters, can also at times surprise the reader. Language likewise plays a role in giving one a sense of the place. Deepa Bhashti's retention of many of the original words, as well as translation of idioms, makes one's reading experience a truly rich one. While some stories may seem thematically similar to others, the overall effect is well worth a visit for the keen eye it casts on society, that is its subject and its realistic portrayal.

The Woman Speaks

Bashabi Fraser, CBE
Professor Emerita of English and Creative Writing, Edinburgh Napier University and Founder-Director of the Scottish Centre of Tagore Studies is an award-winning poet, children's writer, translator, editor and academic.

Give me a room of my own
Where I can bolt the door
To a loud voice and heavy fist,
And let the music gently flow
From untamed brooks
And boisterous rivers
And churn the ocean floor -
To whip the waves aloft
And sing to distant shores.

Give me a field of my own
Where I can shut the gate
Against the grasping overlord
And feel the soil vibrate
With the surge of living seeds
Beneath my untethered feet.
I will summon clouds that wait
To roll in and nourish grain
That sustains a people's mandate.

Give me a nation of my own
Where I can silence brutal force
And let compassion's power rule,
As I listen to the concourse
Of aspirations of the young, where
Melodies will sway the trees, endorse
The promise of the bees, conspiring with
A fecund breeze, to urge the course
Of perturbed streams to dream
Of righting all past wrongs -
To make a nation strong
That only love can enforce.

Freedoms Inherited

Our grandmother clapped with mischievous glee
Signalling her utter victory
As she willed the enthralling walls
To crumble in panic and fall,
Setting our dancing steps free
To trip with lissom liberty.

Stay outside our vision and call -
Don’t come with your strictures and veil;
Our grandmother holds the warm sun’s beams
She has beckoned the wind and urged the streams
She has sung to the buds on outstretched boughs -
They unfurl with grace and glisten and glow
You have lost control and your will to power
For her spirit reigns as we challenge and dare.

Samosas

after Guillevic's Euclidians

Yogesh Patel, MBE
Muti award winning poet, publisher (Skylark Publications UK) and the Word Masala project, is featured in prestigious magazines.

within wiggly lines
that chart no borders and claims
a perfection slips into the delight of Buddhist prajna
while the imperfection of a disorderly aroma
escapes in all directions
from the tyranny of binding outlines
hostage to the smears of newspapers
its lies neatly wrapped in trikonasana
displaced
I imagine the alternative props of culture
where I meet the thuggery of gulls
attacking for fish and chips
at some very English seaside
with gulls only discovering
a thriving masala triangle not to their taste

yes I remain a lost traveller in the West
still navigating without a compass
looking up hopefully
to the masala Triangulum constellation
wrapping me in its folds
through compromises I make
always crisp and fried

in all this there is a quest for perfection
taste that can be the Bermuda Triangle
where one can disappear with glee
without caste creed and colour
beware however it offers a soggy religion
-once the train leaves a platform
no vendor will give a refund for a squelchy God

Dumah

you kneel to God
take up the armour of God
a thousand-eyed with a flaming sword
you lead His army

but ask Him first
deaf and blind
if He will hold a two-and-a-half-year-old baby
in His arms of lava gently flowing
to cradle the baby crying in pain

ask Him
is that why
in His image
He made you deaf and blind

then when you return home
from the battles
hold your baby in your arms of darkness
hum a lullaby to your darling
ask yourself if you will also sing
for the fireball-baby that melted in His arms.